UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182233

UNIVERSAL
LIBRARY

बालाबख्श राजपूत चारण पुस्तकमाला—७

# बाँकीदास-ग्रंथावली

## तीसरा भाग

संपादक

बारहट कविया मुरारिदान अयाचक (जयपुरवाले)
बा० महताबचंद्र खारैड विशारद (जयपुरवाले)

प्रकाशक

नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी

प्रथम बार ] १९३८ [ मूल्य १।)

Published by
The Hony. Secy
N P. Sabha,
Kashi.

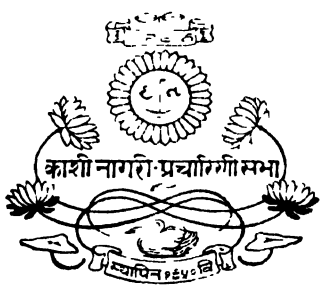


Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd.
Benares-Branch.

# भूमिका

महाकवि श्री बाँकीदासजी के प्राप्त ग्रंथों में से **सात** ग्रंथ तो प्रथम भाग में और **दस** ग्रंथ दूसरे भाग में प्रकाशित हुए हैं। अब इस **तीसरे भाग** में **नौ** ग्रंथ और एक संग्रह यों १० प्रकाशित होते हैं जिनके नाम ये हैं :—

| | |
|---|---|
| १ जेहलजसजड़ाव | ६ सिद्धराव छतीसी |
| २ कायर बावनी | ७ वचनविवेक पचीसी |
| ३ झमाल नखशिख | ८ कृपण पचीसी |
| ४ सुजस छतीसी | ९ हमरांट छतीसी |
| ५ संतोष बावनी | १० स्फुट संग्रह |

"स्फुटसंग्रह" में नीचे लिखे गीत, छंद और खंड-ग्रंथांश हैं:—गीत २५, छंद ९, रस अलंकार के ग्रंथ का खंडित अंश, वृत्तरत्नाकर भाषा का खंडित अंश, काव्य के गुणदोष का निर्णय ( खंडित अंश ) और दोहे ३।

२५ गीतों में कुछ तो कविया मुरारिदानजी व हिंगलाजदानजी के संग्रह में से हैं, शेष जोधपुर के कविराजा मेहरदानजी की दोनों पुस्तकों वा अन्यत्र से प्राप्त हैं। खंडित ग्रंथ भी उक्त कविराजजी के ग्रंथों से निकाले गए हैं। गीतों में से १५ गीतों पर कविया मुरारिदानजी ने टीका की है। पाँच गीत मूल गीतों के साथ नहीं लिखे गए, टीका ही के

साथ लिखे गए। २० गीत मूलरूप बिना टीका के भी और दस टीका के साथ भी लिखे गए हैं। दोहा एक टीका सहित दिया गया है। खंडित ग्रथांशों की टीका, उनके अपूर्ण होने के कारण, हो नहीं सकती थी। जब कभी संपूर्ण ग्रंथ मिलेंगे तभी टीका आदि का उद्योग हो सकेगा।

तीसरे भाग के उक्त १० ग्रंथ कहाँ से प्राप्त हुए, उसे ही दिखलाते हैं:—

( १ ) जेहलजस जड़ाव—कविराजा मेहरदानजी (बाँकीदासजी के प्रपौत्र ) की हस्त-लिखित पुस्तक से।

( २ ) कायर बावनी—स्व० क० रा० श्री मुरारिदानजी कश्मीरवालों से।

( ३ ) झमालनखशिख—एक प्रति उक्त मुरारिदानजी कश्मीरवालों से। दूसरी प्रति म० म० रा० ब० ओझा गौरीशंकरजी से। तीसरी स्व० लाला श्रीनारायणजी जयपुरवालों से।

( ४ ) सुजस छतीसी—उक्त श्री ओझाजी से।

( ५ ) संतोष बावनी— ,, ,, ,, ।

( ६ ) सिद्धराव छत्तीसी—,, ,, ,, ।

( ७ ) वचन विवेक पचीसी—यह "मार्त्तंड" में छपी थी जो हमें मिली नहीं, परंतु एक प्रति कविया मुरारिदानजी जयपुरवालों से बा० महताबचंदजी को मिली।

( ८ ) कृपण पच्चीसी—उक्त कविया मुरारिदानजी से। यह कृपणदर्पण से बहुत अंशों में भिन्न है। द्वितीय भाग के प्रकाशन तक यह नहीं मिली थी।

( ९ ) हमरेाट छत्तीसी—जोधपुर-निवासी बारैठ श्री सीतारामजी लालस ने नक़ल भेजी यह इन सब ग्रंथों के पीछे मिली। नक़ल ता० १७ सितंबर सन् १९३२ की आई थी।

( १० ) स्फुट संग्रह—इसकी प्राप्ति ऊपर लिखी जा चुकी है*।

कहते हैं कि बाँकीदासजी ने कोई दो हजार गीत रचे थे। और उक्त तीनों भागों के ( ७+१०+९= २६ ) ग्रंथों के अतिरिक्त और भी कई ग्रंथ रचे थे जो चारणों और अन्य विद्वान् पुरुषों के यहाँ उद्योग से मिल सकते हैं। जिन ग्रंथों का होना ज्ञात हुआ है, परंतु अभी तक मिले नहीं, उनकी सूचना दी जाती है :—

( १ ) कृष्णचंद्र-चंद्रिका—अलंकारों का वर्णन कृष्ण-कथा में है; बा० सीतारामजी लालस जोधपुरवालों से ज्ञात हुआ। इसी में के कुछ छंद स्यात् "स्फुट संग्रह" में भी आए हैं।

* द्वितीय भाग की भूमिका पृ० ९ पर इस तीसरे भाग के लिये ७ ग्रंथों के नाम दिए थे। उनके अतिरिक्त सं० ८ और ९ तथा स्फुट संग्रह और मिल गए ग्रंथों की प्राप्ति भी दूसरे भाग में दी जा चुकी थी। यहां सुगमता के लिये फिर से लिख दिया है—ह. ना.।

( २ ) विरह-चंद्रिका—गोपियों के विरह का वृत्तांत शांत और करुण रसादि में है। उक्त सीतारामजी से ज्ञात हुआ।

( ३ ) चमत्कार-चंद्रिका—चमत्कार भरे काव्य के चोचलों के छंद हैं। उक्त सीतारामजी से ज्ञात हुआ।

( ४ ) मानयशोमंडन—जोधपुर के म० मानसिंहजी का यश। उक्त सीतारामजी से ज्ञात हुआ।

( ५ ) चंद्रदूषणदर्पण—वियोगिनी ने चद्रमा में दोष बताए हैं। उक्त सीतारामजी से ज्ञात हुआ।

( ६ ) वैशाखवार्त्तासंग्रह—ऋतुओं का वर्णन। उक्त सीतारामजी से ज्ञात हुआ कि यह ग्रंथ उक्त स्व० मुरारिदानजी कश्मीरवालों के पुत्र के पास है।

( ७ ) श्री दरबारी कविता (वा श्री दरबार का कवित्त)—उक्त लालसजी से जाना गया।

( ८ ) रस तथा अलंकार का ग्रंथ—उपरि-लिखित खंडांश से अनुमान है।

(९) वृत्तरत्नाकर भाषा वा व्याख्या—उपरि-लिखित खंडांश से अनुमान है।

(१०) महाभारत छंदोऽनुवाद—प्रथम भाग की भूमिका में वि० भू० पं० रामकरणजी ने इस नाम को लिखा है।

(११) गीत वा छंदों का संग्रह—अनेक पुरुषों से इनका फुटकल रूप में बहुसंख्यक होना सुना गया है।

(१२) ऐतिहासिक वार्त्ता-संग्रह—उक्त श्री ओझाजी के संग्रह में है।

(१३) अंतर्लापिका—उक्त लालसजी से ज्ञात हुआ कि ऐसा कोई पृथक् ग्रंथ है*।

इनमें से सं० ८ और ९ के अतिरिक्त [ जिनके खंडांश "स्फुट-संग्रह" में ( इस भाग में ) प्रकाशित हुए हैं ] अन्य ग्रंथ हमारे देखने में नहीं आए। परंतु उनका होना उक्त महानुभावों के संग्रह में पाया गया। सं० १२ ( ऐतिहासिक वार्त्ता-संग्रह ) के संबंध में उक्त म० म०, रा० ब० श्री ओझाजी ने हमको ता० ३०-३-३१ को लिखा था। उसका

---

* पं० रामकरणजी ने प्रथम भाग की भूमिका में २४ या महाभारत सहित २५ ग्रंथ बताए थे तथा दूसरे भाग की भूमिका में उनके वचनानुसार २७ ग्रंथ होना हमने लिखा था। हर्ष का स्थान है कि अब ग्रंथ २७ से भी अधिक प्रकट होते आ रहे हैं। २६ या २७ से अधिक तो छप ही जाते हैं। यदि उनके आगे के अन्य ग्रंथ सब मिल गए तो ४० की संख्या तक जा पहुँचेंगे। जिस दिन "ऐतिहासिक वार्त्ता-संग्रह" साहित्य-संसार के सामने आवेगा उस दिन उस महाकवि की विद्वत्ता और विद्याप्रेममयी प्रतिभा का प्रकाश होगा। और २००० गीतों का संग्रह डिंगल-प्रेमियों के प्रयास से संसार को मिलेगा तब तो क्या ही हर्ष होगा। ह० ना०।

पुनश्च—बांकीदासजी के भ्रातृज भाड़जी कवि के रचे "पाबू-प्रकाश" (बड़ा) में अंतिम छंदों में, ऐसा आया है:—"चर्चा बतीस छतीस या बड़ा बाप सो बंक"। इससे भी बांकीदासजी के ३२ या ३६ ग्रंथों का होना प्रतीत होता है।—ह० ना०।

सारांश यहाँ इसलिये देते हैं कि उसके जानने से ग्रंथकार की योग्यता और ग्रंथ की उपयोगिता का कुछ भान पाठकों को अभी से हो सके :—

"अनुमान २० वर्ष पूर्व मुंशी देवीप्रसादजी ने बाँकीदासजी की संगृहीत **'ऐतिहासिक बातों'** नाम की हस्त-लिखित पुस्तक नकल कराकर मुझे दी थी। उसमें अनुमान २८०० से कुछ अधिक बातें हैं। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। परंतु उसमें कोई क्रम नहीं है। एक बात मालवे की है तो दूसरी गुजरात की और तीसरी कच्छ की। इस प्रकार एक महासागर सा ग्रंथ है। उसको क्रमबद्ध करना बड़े परिश्रम का काम है। और अनेक पुस्तकें पास रखने से क्रमबद्ध हो सकता है। ग्रंथ क्या है इतिहास का खजाना है। राजपूताना के तमाम राज्यों के इतिहास-संबंधी अनेक रत्न उसमें भरे पड़े हैं। परंतु उनको छाँटना बड़े श्रम और समय का काम है। उसमें राजपूताना के बहुधा प्रत्येक राज्य के राजाओं, सरदारों, मुतसद्दियों आदि के संबंध की अनेक ऐसी बातें लिखी हैं जिनका अन्यत्र मिलना कठिन है। उसमें मुसलमानों, जैनों आदि के संबंध की भी बहुत सी बातें हैं। अनेक राज्यों और सरदारों के ठिकानों की वंशावलियाँ, सरदारों के वीरता के काम, राजाओं के ननिहाल, कुँवरों के ननिहाल आदि का बहुत कुछ परिचय है। कौन कौन से राजा कहाँ कहाँ काम आए, यह भी विस्तार

से लिखा है अनेक राजाओं के जन्म और मृत्यु के संवत्, मास, पक्ष, तिथि आदि दिए हैं। ...एक राज्य के तअल्लुक की बातें सौ-पचास जगह आ जाती हैं।.....अब इसका क्रम लगाया जा रहा है। उदयपुर राज्य की सूची बन गई है। अब मैं अपने इतिहास के क्रम से राज्यों की बातें छाटता हूँ।"...इत्यादि। इस नोट से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह संग्रह कितने काम का है और इससे बाकीदासजी की कैसी ऐतिहासिक योग्यता प्रमाणित होती है। वे कोरे कवि और लाखपसाव के खानेवाले प्रशसक बारैठ ही नहीं थे, अपितु बड़े ही परिश्रमी विद्वान्, लेखक और इतिहासवेत्ता विद्या-व्यवसायी पुरुष थे।

इस प्रकार उक्त त्रयोदश ग्रंथ-रूप सामग्री उपलब्ध हो जाने से "बाँकीदास-ग्रंथावली" के चतुर्थ तथा पंचम भागों के लिये अच्छा अवकाश संप्राप्त हो सकता है।

इस ग्रंथावली का दूसरा भाग सन् १९३१ में प्रकाशित हुआ था। इसका तीसरा भाग प्रायः थोड़े ही मासों के अनंतर बहुत कुछ तैयार हो गया था परंतु कुछ ग्रंथों की टीका होनी थी और 'हमरोट-छतीसी" तथा 'कृपण-पचीसी" के संप्राप्त होने तथा उनके संशोधन और टीका टिप्पणी के तैयार होने एवं शंका-समाधान में बहुत समय चला गया। इसके अनंतर अनेक स्थलों से "स्फुट-संग्रह" का संग्रह होता रहा। कई एक गीत और छंद ऐसे हैं कि

उनकी टीका होनी चाहिए थी। परंतु दुःख है कि ऐसा नहीं हो सका, वे बाकी रह गए। परंतु अन्यों की टीका तो बारहट श्री मुरारिदानजी ने, बा० महताबचंदजी के सहकार्य्य से, कर डाली। कई अन्य अनिवार्य कार्यों ने कभी टीकाकारों को तो कभी इस क्षुद्र लेखक को समाप्ति तक पहुँचने से रोका। अतः बहुत सा समय वृथा निकल गया और प्रिय पाठकों को इस भाग के प्रकाशन की प्रतीक्षा करनी पड़ी, तदर्थ विनम्र भाव से क्षमा की प्रार्थना है। पाठकों को एक हर्षवर्द्धक समाचार सुनाकर हम अपने कर्तव्य ( क्षमा-प्रार्थना ) को पूर्ण कर देते हैं। वह यह है कि इस अवसर में "ब्रजनिधि-ग्रंथावली" प्रकाशित हो गई तथा "रघुनाथ-रूपक" सर्वांग-सुंदरता का रूप धारण करने के योग्य होने लग गया। ये दोनों ग्रंथ-रत्न इस "बा० रा० चा० पुस्तकमाला" के माणिक्य होंगे।

## बाँकीदासजी की जीवनी के संबंध में

बाँकीदासजी के जीवन-चरित के संबंध में नीचे लिखी बातें और ज्ञात हुई हैं :—

( नोट १—उ० के भतीजे कवि आशिया बुधा की, महाराजा मानसिंहजी की नाराज़ी में कही हुई "दुचावैत" में से बाँकीदासजी के संबंध के छंदादि। ये बातें बुधा ने अपनी आंखों देखी लिखी हैं, इससे महत्त्व की हैं। )

( नोट २—कवि बुधा ने महार'दिर और महामंदिर के बाग का वर्णन करके महाराज मानसिंहजी के सभासदों का वर्णन किया है। उसमें काव्य और शास्त्र की चर्चा चली तब कविरा को सभा में बुलाया गया। उसमें कविवर कविराजा बांकीदासजी भी आए और उस समय उनकी योग्यता का जो वर्णन बुधा* ने किया है वही अंश यहां दिया जाता है:—)

"मानूं देवूं की सभा इंद्र के रूप।
ऐसी बिध बैठे जोधाण के भूप ॥ १५१ ॥
चरचा की बात चाली कविराव कूं बुलाए।
सो चरचा करण कूं कविराव भी आए" ॥ १५२ ॥

## कविराव-वर्णन

"जिसकी देवानाथके आगै। सोदुसगरांम ॥
चारणां की ओट। विद्या का धांम ॥ १५३ ॥
दोलाका जाया। मांदुका भ्रात ॥
विद्या में विसेक। ऐसा माहापात ॥ १५४ ॥
सब ग्रंथ्र समंत। गीताकूं पिछांणै ॥
डींगल का तो क्या। संस्कृत भी जांणै ॥ १५५ ॥

* यह बुधा कवि बांकीदासजी का भतीजा या भाई था। स्वयं अच्छा कवि था। इसकी कुछ कविताओं का संग्रह हमारे पास है वह पुस्तकाकार—इसी माला में—"बुधा-ग्रंथावली" भाग १ नाम से प्रकाशित होगा।—ह० भा०।

आपभी असंध । उकत अनोठा धरै ॥
जिम सांगै की जोड़ की। कुण कवि सो होड करै॥ १५६ ॥
जिमका वंदे प्राधर । मन धगा का भूप ॥
वंस का उदोत । वरन का रूप ॥ १५७ ॥
औरभी सोंदुआंसैं । चैन अरु पीथ ॥
डींगल मैं पत्र । गजब जमका गीत ॥ १५८ ॥
और भी आसीगूं मैं । कवि बंक ॥
डींगल पींगल संस्कृत । फारसी मैं निसंक ॥ १५९॥
मत अरु मतंक । सद्रासमसमसुधी ॥
कुतबीकातो कया । मीरबाजगां संबूधा ॥ १६० ॥
हाफिजां उरसी हलंब । साहनांमा सीराज ॥
वगलव छोगा बगदाद । नाम किनान रूम ताज॥ १६१ ॥
सिमनवी दीवान मीछना । सिकंदरनामा सार ॥
सीमथां मायरां समेत। और भी किताबां अपार॥ १६२ ॥
जिस बंक कूं हसती अरु घोड़ा । सुपपालू गांम ॥
मोती कड़ा गूंदड़ा । और भी रोकड़ा दाम॥ १६३ ॥
लाप पसाव ससाप कै । कुरब ऊठगा का दीया ।
ऐसी बिध मांन महाराज । बंककूं भाषा-गुरकीया ॥१६४॥
औरभी जुगतावगा सूर । सवाइतजमाल ॥
बंस का दावा । बरन का ढाल ॥ १६५ ॥
वीसोतर का छोगा । दिल का उदार ॥
जस जुगतेस कूं बषांणै । सबही संसार ॥ १६६ ॥

चक्रधारियूँ की गदा अाक्रम । विद्या का समंद ॥
महाराज का दरबारगीर । अैसे अैसे कवंद ॥ १६७ ॥
साक्षात सरस्वती का भंडार । अैसे कविराव अाए ॥
सो हिंदुअाण का सूर । मान महाराजकूँ विरदाए ॥१६८॥
विछायत पर बैठे । सरब हो कवीसर ॥
अवर्रा का कोट । जिसकूं सरस्वती का वर ॥ १६९ ॥
जिस विछायत पर । शटाव चरचा के भरे ॥
और भी कवी सुणावै । कथा कथा ग्रंथ कहे ॥ १७० ॥
चोरासी रूपग । अठारै पुराण ॥
चवदै शास्त्र । वेद क्यार का वखाण ॥ १७१ ॥
और भी षट भाषा । नव व्याकरण ॥
भाँत भाँत का ग्रंथ । भात भात का गण ॥ १७२ ॥
विध विध की चतुराई । विध विध के विधान ॥
सो सब ही सुणै । महाराजा मान" ॥ १७३ ॥

इस उपरि-लिखित उद्धरण से स्पष्ट है कि बाँकीदासजी का सम्मान और पद जोधपुर की राजसभा में कितना उच्च था और वे संस्कृत, प्राकृत, डिंगल, पिंगल और फारसी आदि के कैसे पंडित थे। फारसी की कई किताबों के नाम भी बुधा कवि ने लिख दिए जिनको बाँकीदासजी ने पढ़ा था और उनकी फारसी की लियाकत का प्रकाश महाराज मानसिंहजी की राजसभा में अन्य अनेक कवियों और पंडितों के सामने हुआ था। "फारसी में नि:शंक" बेधड़क कहने-

वाले थे। मीरखायजगाँ शायद मसनवी आजरखायजाँ हो। हाफिज से मतलब दीवाने हाफिज। उरफी शायद कसायदे उर्फी हो। हलंब शायद यहयाउलउल्म हो। साहनामा से तात्पर्य शाहनामा फिरदोसी। शीराज से मुराद सादी शीराजी। बगलप शायद बलख बुखारा। बगदाद से मदरसए बगदादी निजामिया की इंतिहाई दर्सी किताबों से मुराद हो। किनान से कनआँ मुल्क हो। रूम से मसनवी मौलाना रूम। कनआँ से माहे कनआँ से मुराद अर्थात् यूसुफ जुलेखा हो। ताज से मुराद अरब के उलमा की किताबें। मसनवी से और भी मसनवियां जैसे मसनवी मीरहसन वा दिलसनोवर इत्यादि। दीवान से दीवाने हाफिज वगैरह। सिकंदरनामा बहरी व बरी। सीसश्राँ से रुस्तम पहलवान या उसके मुल्क सीसताँ की दास्तानों से हो।

बाँकीदासजी को लाखपसाव, हाथी-पालकी सिरोपाव, कड़ा बलेवड़ा आदि तथा ताजीम सोना इत्यादि मिले। महाराज ने बाँकीदासजी को अपना भाषा-गुरु बनाकर सम्मानित किया और उनसे विद्या पढ़ी।

"गजब जिसका गीत" ऐसा कहने से बाँकीदासजी की गीत-रचना की उत्तमता प्रकट है, कि उनके दिल दहला देने-वाले, वीररस उपजानेवाले गीत बहुत प्रभावोत्पादक होते थे। इत्यादि उक्त बखाँण से अनेक बातों के संकेत और पते लगते

हैं। डिंगल भाषा में गीत-रचना ही प्रधान मानी जाती है और बारहट कवि गीतों को बहुत ही सावधानी, चतुराई, ओज और शक्ति से भरकर कहते हैं। फिर उनका बोलना बहुत ही आग उनमें फूँक देता है। उनके मुख की "सरस्वती" उनके गीतों को सौगुना रोचक और मज़ेदार बना देती है। इनके गीतों ने कायरों को वीर बना दिया, गई बीती लड़ाइयों को जय प्रदान करा दी, भगोड़ों के दिलों में वीर-रस भरकर युद्ध में लड़ाकर जय दिला दी, रियासतें उलटी दिला दीं और न जाने कितने और 'गजब' ढा दिए। इसी रंग-ढंग के गीत बनाने और कहनेवाले बाकीदासजी भी थे। "फुट संग्रह" के गीत सं० ( १७ ) में बाँकीदासजी ने स्वयं अपनी विद्या, प्रतिभा और जानकारी को बताया है। इसको पढ़ना उचित है : "चौंसठ अवधान...।"

( २ ) बाँकीदासजी के संबंध में सीतारामजी लालस जोधपुरवाले लिखते हैं :—

( क ) "बाकीदासजी के पिता फतहसिंहजी का विवाह बागसी की **सरवड़ी** परगना सिवाना, इलाका जोधपुर, में हुआ था। बाँकीदासजी के मामा चार भाई थे। बचपन में बाँकीदासजी ने कुछ समय तक सरवड़ी गाँव [अर्थात् ननिहाल ही ] में विद्या प्राप्त की थी। एक समय जब वे १२ ही वर्ष के थे [ संभवतः संवत् १८५१ वि० हो ] तो उनको उनके मामा ऊकजी **बाले** गाँव के ठाकुर नाहरसिंहजी के पास ले गए।

ऊकजी ने बालक की प्रशंसा की कि **भाँणूँ** बहुत होनहार मालूम देता है। जो **खूबडजी*** [ उनकी कुलदेवी ] की पूर्ण कृपा रही तो भविष्य में बड़ा भारी कवि होगा। इस पर ठाकुर ने पूछा कि क्या यह कविता भी करता है? तो **ऊक**जी ने कहा कि हाँ यह कविता बढ़िया करता है। यह भाँणूँ आशुकवि अभी से है। इस उत्तर को सुनकर ठाकुर ने कविता करने की आज्ञा की। इस पर बालक बाँकीदासजी ने तुरंत दो दोहे और एक सैणोर गीत रचकर सुना दिए। बालक की अनूठी कविता से ठाकुर प्रसन्न हुए। और कहा कि यह माँगे वही दूँ। बाँकीदासजी मोताज लेने से इनकारी हो गए। उस पर ठाकुर ने हुक्म दिया कि इस बालक कवि को एक अच्छा सा घोड़ा दे दो और कानों में सोने की मुरकियाँ [ मोती की जगह ] पहना दो। परंतु बाँकीदासजी ने फिर भी लेने से इनकार किया। इस पर ठाकुर के कामदार ने बाँकीदासजी से कहा कि क्या तुम्हारा विचार हाथी लेने और मोती-कड़ा पहनने का है जो इतना कहने पर भी लेने से इनकार करते हो। इस ताने पर बाँकीदासजी को कुछ क्रोध आ गया और वे बोले कि यदि खूबडजी (माताजी) की मेहरबानी जैसी आज है वैसी ही आगे भी

---

* "खूबडजी" चारणों की एक कुलदेवी का नाम है। इस देवी का स्थान सरवड़ी में है। इसके "भुंडेरवत" की साय भी कहते हैं।—ठाकुर सीतारामजी।

बनी रही तो अवश्य हो एक दिन हाथी सवार हूँगा और कड़े मोती पहनूँगा। इतना कहकर ठाकुर से क्षमा माँगकर अपने मामा के साथ बाँकीदासजी गांव को लौट आए। होनहार कवि की यह प्रतिज्ञा कैसी उत्तम रीति से उसके जीवन में पूरी हुई सो बाँकीदासजी और महाराज मानसिंहजी के चरित्र में स्पष्ट ही है। एक समय कविराजा बाँकीदासजी हाथी-सवार जोधपुर में होकर जा रहे थे उसी समय उक्त ठाकुर रास्ते में मिले। तब अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण होने को उक्त ठाकुर को कारण मानकर कृतज्ञता का एक सोरठा कहा। यह सोरठा प्राप्त नहीं है। *

उक्त लालसजी ने बाँकीदासजी का एक दूसरा आख्यान लिख भेजा है। वह इस तरह है कि—कविराजा बाँकीदासजी अपने गाँव जाते तब भांडप गाँव भी जाया करते क्योंकि उसमें लाधूसिंह सोलंकी क्षत्रिय रहता था जो अपने आतिथ्य-सत्कार के लिये विख्यात था। उसका यह दृढ़ प्रण था कि उसके यहाँ या गाव में कोई भी पुरुष अतिथि आ जाता तो उसको बिना आतिथ्य-सत्कार के वह जाने ही नहीं देता था। बाँकीदासजी का इससे बड़ा स्नेह था।

* स्व० ठा० भू सिंहजी के "विविध संग्रह" में रायपुर के ठाकुर अर्जुनसिंहजी को कृतज्ञता का दोहा बांकीदासजी ने कहा था सो पृ० ११६ पर देखें। तथा "बां० दा० ग्रं०" प्रथम भाग की भूमिका पृ० १०, ११ पर आख्यान देखें।—ह० ना०।

खांडप गाँव सरवड़ी के समीप ही था। और "लाधा" की उदारता से बाँकीदासजी को उससे दिली ताल्लुक हो गया था। एक समय की बात है कि महाराजा मानसिंहजी ने कविराजा बाँकीदासजी से पूछा कि "दूला" जैसा उदार राजपूत अब भी कोई है? तब उत्तर में कविराजा ने अर्ज किया कि अब भी है, और इसही "लाधा" का आख्यान कह सुनाया, और लाधा की प्रशंसा में नीचे लिखा एक गीत भी पढ़कर सुनाया :—

छंद छोटा साँणोर

"झरहरियो आभ न कूमांडे झड़, बिषमां जग परहरियो वाव।
जो उगणतरो थरहरियो जग में, चालक न परहरियो चाव॥१॥
अँन विन लोक चहूँ चक ओड़ै, गया मालवे छोड़े गेह।
दोवों नाडकाँ छेह दिखायो, आसावत दरियाव अछेह॥२॥
मानव बिकै पाव अँन माटे, दुरभिष जग में ताव दियो।
अँन रांधे कोरे नह ऊतर, **लाधे** हद सो भाग लियो॥३॥
भेटे कोय गयो नँह भूपां, परजाची कीधो प्रतिपाल।
खोटे समय उगणतर **खाँडप**, सोलंकी दरसियो सुकाल॥४॥"

इस दातार के प्रण का आख्यान और उक्त गीत को सुनकर महाराज बहुत प्रसन्न हुए और बाँकीदासजी को कहा कि ऐसे दानवीर राजपूत को हम भी देखना चाहते हैं। कविराजा ने उसको बुला भेजा। उसके आने पर महाराज ने उसको मेहरबानी करके उसके गाँव खाँडप ही में जागीर

इनायत की। लाधा के वंशज उस जमीन को अब तक खाते हैं। लाधा सोलंकी के वंश के राजपूत सदा से वीर और परोपकारी होते चले आते हैं।

महाराजा अजीतसिंहजी के समय में ओठी लोग खाँडप गाँव को लूट-खसोट करने लगे तब उनके साथ लड़कर यह लाधा वीरगति को प्राप्त हुआ और अपनी कीर्त्ति संसार में अमर कर गया।

( ४ ) उक्त लालसजी ने अपने पत्र ता० २०।११।३२ में एक चमत्कार कविराजा बाकीदासजी का लिखा। महाराज मानसिंहजी के समय में कहीं से एक **अम्बाराय** नाम का कवि जोधपुर में आया और जोधपुर के कवियों की योग्यता का अंदाजा करने तथा उनको विजय करने के विचार से उसने एक छप्पय लिखकर महाराज की सेवा में पेश किया और अर्ज कराया कि आप कवियों का आदर करते हैं, आपके पास कई प्रसिद्ध कवि भी हैं, अतः मेरी छप्पय का अर्थ आपके किसी कवि से करा दिया जायतो मैं जानूँगा कि आपके पास कोई कवि है; नहीं तो आपको ये लोग धोखा दे रहे हैं। इनमें वास्तव में कोई योग्य कवि है नहीं और आपको विद्वानों की पहचान नहीं है। छप्पय को महाराज ने बाँचा विचारा, परंतु अर्थ खुला नहीं। तब छप्पय को बाँकीदासजी के पास अर्थ कर देने को भेजा। बाँकीदासजी भी प्रथम तो इस ओघड़ छप्पय को पढ़कर चक्कर में पड़ गए।

परंतु फिर उस पर विचार करके उसके प्रयोजन और तात्पर्य्य को समझ गए। और अच्छी तरह संगति बिठाकर महाराज को अर्थ निवेदन करके अर्ज किया कि सभा के बीच में उस कवि को बुलाकर इसका अर्थ सुनाया जाने का प्रबंध करा दिया जाय। महाराज ने प्रबंध करा दिया। सभा में बाँकीदासजी ने उस छप्पय को और अर्थ को इस प्रकार कह सुनाया :—

छप्पय

"झुरत पत्र झुर गए तु पत्र, न न पत्र सु झुर गए।
मुरत अंब मुर गए तु अंब, न न अंब सु मुर गए॥
खुलत कमल खुल गए तु कमल, न न कमल सु खुल गए।
भमत भमर भम गए तु भमर, न न भमर सु भम गए॥
**अंबराय** विद्वान पर उपज्यो भ्रम सोचत बिमर।
चँदबदनी चंदा अवे बिलखत चद सुकवन पर॥"

बाँकीदासजी ने इस छप्पय का अर्थ व प्रयोजन इस प्रकार बताया—कि कोई तीन स्त्रियाँ सहेलियाँ आपस में अपने पतिदेवों के पुनरागमन के संबंध में, जैसा कि स्त्रियों का यौवनावस्था में स्वभाव होता है, बातें करती हैं। उनमें पहली ने दूसरी से कहा कि हे सखी तू देख वृक्षों के पत्ते झड़ झड़कर गिरते हैं और दूसरी ने कहा कि हाँ गिर गए हैं अर्थात् पतझड़ का मौसम आ गया और वसंत ऋतु आनेवाली है सो पतिदेव ( अपने वादे के अनुसार ) अब अवश्य

आ रहे होंगे। तो तीसरी ने कहा कि पत्र तो झड़ गए परंतु अभी वसंत नहीं आई। यदि आ जाती तो पतिदेव आ ही जाते।--इस पर पहली ने कहा कि वसंत का न आना तू कैसे कहती है, देख आँब के वृक्षों के मोर ( बगर ) आ गए ( यह खास वसंत का लक्षण है )। इस पर दूसरी ने कहा हाँ, आँब के तो मोर आ ही गए। इस पर तीसरी ने कहा कि नहीं नहीं आँबे मोरीजे नहीं ( अर्थात् तुमका प्रेम के आवेश ही में ऐसा दृश्य सा केवल प्रतीत होता है ) क्योंकि आँब मोरीज जाते तो ( वसंत-आगमन में ) पतिदेव अवश्य आ जाते।—इसी प्रकार कमलों के खिलने और भँवरों के गुंजारते फिरने को देखकर तीनों में विवाद हुआ। तीनों सखियों के प्रियतम पतिदेव विदेश जाते हुए अपनी प्रियतमाओं से वसंत ऋतु तक लौट आने का वादा ( वचन ) दे गए थे। उस प्रतीक्षा में आपस में ये विरह-कातर युवतियाँ प्रेमालाप कर रही हैं। उनकी अवस्था प्रेमोन्माद की सी हो रही है। एक कहती है, वसंत आ गई; दूसरी उसकी पुष्टि करती है तो तीसरी उनकी बात का विरोध करती है। और फिर उनमें कोई अपनी कही बात ही का भ्रम करती है, कोई विस्मृत होती है तो किसी को चंद्रमा का उदय मानों अमृत टपकानेवाला देवताओं का विमान ही है जिसमें उसके प्रीतम आ रहे हों ऐसा विभ्रम होता है। फिर चाँद को देखकर अपनी भूल पर अफसोस करती है और यथार्थ स्मृति

हो जाने पर कहती है कि नहीं चाँद तो ऊगा है। यह किसी पर भी अमृत नहीं बरसाता है और न यह विमान ही है जिसके द्वारा प्रीतम आते हैं, इत्यादि। इसमें तीनों नायिकाएँ स्वकीया प्रोषितपतिका हैं। इनमें उत्तमा, मध्यमा, कनिष्ठा का भेदाभास भी है। इसमें अलंकार विभावना संभावना पर्य्याय और संदेह का संकर है।—इत्यादि काव्याङ्गों के विस्तृत वर्णन के साथ कविराज ने व्याख्या की तो वह अंबाराय कवि मुग्ध हो गया और महाराज से भरी सभा में अर्ज की कि यह कवि आपका कोरा कवि ही नहीं है, यह तो दूसरा **गणेश** है। महाराज मानसिंहजी ने तभी से बाँकीदासजी को प्रसंग-वश इस नूतन नाम—"**गणेश**"—से संबोधित किया। वस्तुतः यह पदवी बुद्धि की प्रखरता, अलौकिक सूझ-बूझ के कारण ही नहीं शरीर की स्थूलता के कारण भी ठीक फबती हुई थी।

( ५ ) बाँकीदासजी के तीन भाई और थे। इनके एक भाई ने ( जो अच्छा कवि था ) "पाबूप्रकाश" ग्रंथ बनाया जो इसके वंशज करणीदान के पास है। यह करणीदान भी अच्छा कवि है और उसने "करणी-प्रकाश" ग्रंथ बनाया है। "पाबूप्रकाश" ग्रंथ दोहा, चौपाई, तोटक आदि छंदों में है और कविता उच्च कोटि की है। इस ग्रंथ को यह करणीदान महसा किसी को धीजता वा दिखाता नहीं है। जोधपुर के महाराज कर्नल सर प्रतापसिंहजी ने उद्योग किया

और भी कई लोगों ने उद्योग किया परंतु यह पुरुष ग्रंथ किसी को नहीं देता है। इसकी ऐसी इच्छा तो है कि बीकानेर के महाराज चाहें तो उनको दे दें। ( यह वार्त्ता जोधपुर ठाकुर साहिब रा० बा० राज्य श्री नरेंद्रसिंहजी के मुख से सुनकर लिखी गई। ) क्या ही अच्छा हो कि महाराज बीकानेर इस कवि को बुलाकर आदर करें और यह ग्रंथ उससे श्रवण करें और अपने पुस्तकालय में रखावें तो डिंगल-साहित्य के ऐसे रत्नों की रक्षा हो जाय नहीं तो ये नष्ट हो जायँगे।

( ६ ) बांकीदासजी की महिमा में इस भाग के "स्फुट संग्रह" में "कंसो इंद्रजीत..." सं० २ यह कवित्त बहुत गौरव का है। उसे अवश्य देखें विचारें।

* "पाबूप्रकाश" एक बड़ा और एक छोटा छप गए जो हमारे संग्रह में हैं। एक बड़ा मोड़जी आसिया का रचा है। यह मोड़जी बुधाजी का बेटा था। बुधाजी बांकीदासजी के भतीजे वा भाई बताए जाते हैं।—ह० ना०।

मोड़जी का पुत्र पाबूदान है, करणीदान नहीं है, यह संशोधन उक्त सीतारामजी लालस ने कराया है।— ह० ना०।

"पाबूप्रकाश बड़ा" तो "सुमेर प्रेस" जोधपुर का संवत् १९८९ का छपा हुआ है। इसका रचयिता मोड़जी है। पुस्तक के अंतिम छंदों में ये दोहे संबंध प्रकट करते हैं—

## ग्रंथों का सार-सूचना

इस तृतीय भाग के अंतर्गत ग्रंथों का परिचय, उनकी सारावली तथा उनका संक्षिप्त माहात्म्य दिया जाता है कि जिससे पाठकों को सुविधा रहे। कई ग्रंथ ऐतिहासिक हैं जिनमें से इतिहासांश के स्पष्टीकरण की आवश्यकता जानकर वहाँ नोट लगा दिए हैं। इनमें संख्या १ और ६ तथा ८ में भारतवर्ष के प्रसिद्ध दाताओं और वीरों के यश-प्रकाशन की पूर्ण चेष्टा की गई है। कवि की जानकारी और वर्णन-विधि अत्यंत सराहनीय है। कवि के यथार्थ आशय को अनेक स्थलों में हम प्रकट करने में असमर्थ और असहाय रहे हैं। यह कार्य्य अन्य विद्वानों के लिये शेष रहा ही

---

चलो बतीस छतीस या बड़ा वाप मो बंक।
तबूँ भाग जाड़ तिक आखर आडे अंक ॥ १ ॥
मालमधर बुधमालरा आखर चादू ओड़।
कह टूंपग चेला किया रेणाकज राठोड़ ॥ २ ॥
कवराजा नरपत कियो संधा पारख मांन।
कव मन मंडण गुण कियो बंधू बांकीदान ॥ ३ ॥
पाल पोरसातन प्रगट जोड़ नाम दिय जब्ब।
कव जूँ जाड़ गुण कियो मोडे पोछ सुजब्ब ॥ ४ ॥

"पाबूप्रकाश" छोटा जोधा अगरसिंहजीकृत जोधपुर का ही छपा है। पृ० सं० ३६ है बुधाजी का भी कविराज होना पाया जाता है। अर्थात् बुधाजी भी कविराज हुआ।—ह० ना०।

समझना चाहिए। अन्य ६ ग्रंथों में नीति, उपदेश, शिक्षा, विशेष वर्णन, कुनीति-निवारणार्थ सदुपदेश-प्रकाशन बड़ी ही उत्तमता से आए हैं, सो पाठकों को, ध्यानपूर्वक पढ़ने से ही, अवगत हो सकेंगे और तभी लाभ और आनंद मिल सकेगा।

( १ ) "जेहल जस जड़ाव"

यह ७४ दोहों-सोरठों का ग्रंथ बाकीदासजी ने कच्छ-भुज के प्रसिद्ध राजा जेहल के यश-गायन में कहा है। यह **जेहल**, जेसल या **जेहा भारामल** जाड़ेचा का पुत्र था। इसलिये इसको "भाराणी" भी लिखा है, जैसे फूलाणी (फूल का पुत्र)। यह जाड़ेचा यादवों का प्रसिद्ध वीर और दातार हुआ है जिसका नामी पूर्वपुरुष "सम्म" वा "समा" था। इसी कारण जेहल को कवि ने "सामां" ऐसा भी नाम देकर संबोधन किया है। यथा—"दोहा ३० में सामां इंद समंदतूं। तथा दोहा ३३ में 'सामां दाता दीठ सह"। इसी तरह सोरठा ५१, ५२ और ८५ में भी। साम की १८७वीं पीढ़ी में "ऊनड" हुआ जो बड़ा दानी और वीर था और सिंध के पास के इलाके का राजा था—बिलोचिस्थान और सिंध के बीच का विभाग। इसका बड़ा भाई "जाम मोड़" था जो कच्छ का राजा हुआ। इसकी चौथी पीढ़ी में फूल का पुत्र प्रसिद्ध **लाखा फूलाणी** हुआ जो बड़ा वीर और दानी था।

और याचकों में प्रातःस्मरणीय गिना जाता है। इसकी कुछ पीढ़ियों के पीछे भारमल के यह जेहल हुआ। भारमल वा भारा यह कई जगह इस ग्रंथ में आया है और जेहल (वा जेहा) को भारमल का पुत्र लिखा है। यथा—"भारा गाव" छंद १ में। दोहा ३९ में सो घर **भारहनन्द.** दोहा ५० में "**भाराणी** जस भार", सोरठा ५३ में "**भाराणी** भूलो नहीं", सोरठा ५४ में "सुनजर **भारहमाल** सुत"। सोरठा ५९ में "भारानंद चकोर भत।" ऐसा आया है। इसको कच्छ का राजा कहा है यथा दोहा ३ में "काछ नरेस कुँवार।" और आगे चलकर "भुज" का राजा कहा है—यथा दोहा ४ में "भुज जेहल नूं भेटियो।" और दोहा २१ में "इण भुजनूं आवंत"। सोरठा ५० में "भुज मडण थारा भुजां"। सोरठा ५५ में "भुजरो भलो भवाड़ियो।" इसके पूर्वज ऊनड़ और **लाखा** थे सो कवि ने भी बताया है। यथा—दोहा १२ में है "जेहा ऊनड़-हरा"। सोरठा ५३ में "ऊनड़रो आचार"। दोहा ७ "सुणजस गाजै सरग में **ऊनड़ लाखा** भूप। भाराणी दाता भला राणी जाया रूप"॥ ये जाड़ेचा यादव थे, इसको कवि ने स्पष्ट दरसाया है और वंश का गौरव वर्णन किया है। यथा दो० ९ में—"ज्यां जेहा जादव जिसो।" तथा दो० १७ में—"हब जादव जस बस हुवो जग जाहर जेहल्ल।" दो० ११ में—"जाड़ेचा घर जोत।" सो० ४९ में—"जाड़ेचा दाखै जगत"।

इससे स्पष्ट है कि ये जाड़ेचा खाँप के यादव-वंश के थे और परंपरा से वीर और दानी होते आए हैं। ("रासमाला" से सार उद्धृत किया जाता है।)

"रासमाला" (फार्बस साहिब का गुजरात का इति हास-संग्रह) में लिखा है कि गजनी की गद्दी पर जामनर-पति राजा था। उसकी १३वीं पीढ़ी में "सामपत" उर्फ "समों" हुआ। इसी से इसके वंशज "समां" कहलाए जो आगे चलकर **जाड़ेचा** नाम से प्रसिद्ध हुए। जाम समां के हाथ से मुसलमानों के युद्ध में गजनी जाती रही। फिर ये बिलूचिस्तान और सिंध के बीच में आकर बसे और वहां राज्य किया। समां की १४ वीं पीढ़ी में "लखियार भड़" राजा हुआ। उसके लाखोजी १ और लाखोजी के ऊनड़ हुआ। यह लाखोजी पहिला था। ऊनड़ का बड़ा भाई "जाममोड़" हुआ। वह कच्छ में **पाटगढ़** के राजा बाघम "चावड़ा" से (जो इसका मामा था) राज्य लेकर सन् ८१६ ई० में गद्दी पर बैठा। उसके "साड़जी" हुआ। इसने **कंथकोट** का किला सन् ८४३ ई० में पूर्ण कराया। साड़जी के फूलजी हुआ जिसने ८५५-८८० तक राज्य किया। इसके बाद लाखा फूलाणी हुआ जिसने ८८० से ९७९ तक राज्य किया।

म० म० पं० गौरीशंकरजी ओझा ने लाखा फूलाणी का समय (जनवरी फरवरी सन १९०४ के "समालोचक" पत्र में) ११वीं शताब्दी लिखा है। उन्होंने अनेक दृढ़ प्रमाणों से

सिद्ध कर दिया है कि यह लाखा फूलाणी विक्रम संवत् १०३६ ई० ९८० में अन्हिलवाड़े की लड़ाई में मूलराज के हाथ से मारा गया*।

अब देखना यह है कि जेहल लाखा फूलाणी से कितने वर्ष पीछे हुआ तथा लाखा फूलाणी की ख्याति (कीर्ति) कैसी थी जिसके वंश में जेहल हुआ था। म० म० श्री गौरीशंकरजी ओझा से पत्र द्वारा जिज्ञासा की तो ता० ३० दिसंबर सन् २९ तथा ता० ३० मार्च ३१ के पत्रों में उन्होंने अनुसंधान-मय वृत्त लिखे हैं। उनका सार यह है—कच्छ का प्रतापी व महाधनाढ्य राजा खेंगार था जिसने वि० सं० १५६६ से १६४२ तक राज्य किया। खेंगार ने बड़ी संपत्ति इकट्ठी की थी परंतु उसका उपभोग कुछ नहीं किया। खेंगार का पुत्र भारा ( भारमल ) हुआ था, जिसने १६४२ से १६८८ तक राज्य किया। भारमल ने पिता की संपत्ति का खूब उपभोग किया। इसके संबंध में अब तक यह कहावतें चली आती हैं—( १ ) 'खाटी खेंगारे भोगी भारे' ( २ ) 'खाटीगाव खेंगार भारमल भुगती भरा'। भारमल का

* श्री ओझाजी ने अपने संगृहीत लेखों से, अनेक शिलालेखों से, मूलराज का समय संवत् १०१७-१०५२ सिद्ध किया है। परंतु "मारवाड़ के मूल इतिहास" के पृ० २७ के फुटनोट में पं० रामकरणजी ने सांभर के शिलालेख से मूलराज का समय ९९८ वि० लिखा है जो उसके राज्यारंभ से भी पूर्व का है। यह स्थल विचारणीय है।—ह० ना०

बड़ा बेटा **जेहल** था जिसको जेहा या जैसल भी कहते हैं। जेहल ने अपने पिता के सामने ही बाबा की अतुलित संपत्ति का भोग प्रारंभ कर दिया और इतना दान किया कि कुँवर-पद में ही विख्यात हो गया परंतु अपने पिता भारमल के सामने ही मर गया और अपना नाम अमर छोड़ गया। इसी जेहल का जस बांकीदासजी ने इस ग्रंथ ( जेहल-जस-जड़ाव ) में गाया है। बांकीदासजी की संगृहीत 'ऐति-हासिक वार्ता संग्रह' हस्त-लिखित पुस्तक की सं० ४०० में भाटी जैसा की तरफ भारमल का दूहिता लिखा है। कच्छ के जाड़ेचे भाटी ( यादव ) हैं। उनके पूर्वज संभा कहाते थे जिनका राज्य सिंध में था। ये भी **संभ** कहाते हैं। जेहल के पहले ही मर जाने से भारमल का उत्तराधिकारी उस( भारमल )का छोटा बेटा भोजराज हुआ था। भार-मल के पूर्वजों में लाखा, फूल का बेटा, बहुत पहले हुआ था जो बहुत प्रसिद्ध हुआ था। लाखा से सात पीढ़ी पहले ऊनड़ हुआ था। ये इस वंश के बहुत प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं। बादशाहों से भी कच्छ के राजाओं का संबंध अच्छा रहा है। सं० १८७६ ई० के छपे हुए आत्माराम केशव द्विवेदी के बनाए हुए "कच्छदेशनो इतिहास" नामक ग्रंथ में भार-मल के विषय में लिखा है कि अकबर बादशाह ने गुजरात अपने अधीन करके मुजफ्फर को गुजरात से निकाल दिया तो उसने बागी होकर बड़ा नुकसान करना प्रारंभ कर

दिया। इस पर उसको पकड़ने के लिये गुजरात का सूबेदार आजम कोकलताश मुकर्रर हुआ तो उसका इसने पीछा किया तो मुजफ्फर ने जामनगर के जाम सत्ता के यहाँ शरण ली। कोकलताश ने शाही चोर को माँगा। परंतु जाम ने अपने शरणागत को नहीं दिया। इस पर कोकलताश ने कच्छ के राव भारमल ( भारा ) तथा आसपास के राजाओं से मदद लेकर जाम पर चढ़ाई की और फतह पाई। जहाँगीर के समय में भी भारमल का सम्मान होने की बात उक्त पुस्तक में आई है। इससे प्रकट है कि दिल्ली के बादशाहों से इस वंश के राजाओं ने मेल जोल अच्छा रखा था*। इति

इसके अतिरिक्त इस वंश का लाखा फूलाणी सबसे अधिक प्रसिद्ध हो गया है। बंदीजनों में वह प्रातःस्मरणीय है। इसके पँवाड़े, गीत, छंद, दोहे सोरठे प्रसिद्ध हैं। उनमें से एक इधर जयपुर में प्रसिद्ध है।—"माया माणी बांघलाँ कै **लाखै फूलाँणी**। रहसी पैंती माँग गयो हरगोविंद नाटाणी।" दातारों के नामोच्चारण में छंद कहे जाते हैं उनमें से कुछ बानगी यों है:—

---

* मुंशी देवीप्रसादजी हिंदी 'जहाँगीरनामे' के पृ० २२९-२३० और २३२ पर, सावन संवत् १६७५ में "राव भारा" का बादशाह पास हाजिर होकर नजर करना और उसकी सेवा का हाल लिखा है। उस समय भारा ९० वर्ष का था।—ह० ना०।

"**लाखा** सरीखा लख गया, अनड़ सरीखा आठ।
हेम हराऊ सारिखा चलै न बहसी बाट" ॥ १ ॥

यह अनड़ स्यात् ऊनड़ होगा। हेम हराऊ के बारे में यह दोहा है :—

"लाला किया विछांवणा हारा बाँधी पाज।
काँटाँ माँनी पाँडगा हेम गरीबनवाज ॥ १ ॥

( क० [illegible] गोविन्ददानजी से प्राप्त )

हरगोविंद नाटाणी जयपुर का खँडलवाल महाजन था जिसने महाराजा ईश्वरीसिंहजी को धोखा देकर केशवदास खत्री मुसाहिब को तो जहर पिलवाकर मरवा दिया और आप मुसाहिब हो गया, और राज्य के धन को ऐश-आराम और दातारी में उड़ाकर दातार मशहूर हो गया। और मारके का काम पड़ा तब माधोसिंहजी से मिल गया कि जिससे ईश्वरीसिंहजी को भी विष से आत्म-हत्या करनी पड़ी। यह भारी हरामखोर था तो भी याचकों ने इसके दान की प्रशंसा की। उसी समय का ईश्वरीसिंहजी का यह मर्म-स्पर्शी वाक्य है—

"साँचो तू ईसरा झूँठी या काया।
प्याला केशोदास ने पाया सो पाया" ॥ १ ॥

एक छप्पय में अन्य दातारों के नामों के साथ लाखा फूलाणी का भी नाम आया है, यथा—

"दावराँण उम्मेद दुरद गीताँ रादेतो।
देतो हाडो नाँहि लोल अति महँगा लेतो॥
नहिं बाघो राठोड़ नहीं शेरो सादाणीं।
नहिं जाड़ेचो जाम नहीं **लाखो फूलाँणी**॥
दातार इता दीसै नहीं करता रसा परलै किया।
कबीसर अब कीजै किसूँ गीताँरा गाहक गया"॥१॥

(क० मुरारिदानजी से)

इसका प्रत्युत्तर भी किसी ने (स्यात् बाँकीदासजी ने) दिया—

"अजे भीम आहाड़ाँ अजे सुरजो बीकाणों।
अजे अचल ऊमराँ, जग सारो जस जाणों॥
अजे आतो गोहिलाँ, अजे माधव रिडमालाँ।
अजे मान जोधाँण, पात बैठा सुखपालाँ॥
कुलमोडरभण काँधावनाँ, किम जाणों कीरत कली।
नेसती-पणाँ दीसै नहीं अजेऽपि आसत ऊजली"॥१॥

(क० मुरारिदानजी से)

किसी अन्य कवि की उक्ति बड़े मारके की है जिसमें लाखा की महिमा दरसाई है—

"लाखा पुत्र समुद्र का, फूल घरे अवतार।
पारेवाँ मोती चुगे, लाखारे दरबार"॥ १॥

("समालोचक" पत्र जनवरी १९०४ के से)

"पल्लाँणी हीरे जड़ी, सूरज पच्चाँणी ।
पच्छम हिंदा पातशा, लाखा फूलाँणी।" ॥ १ ॥

( उक्त पत्र से )

इस दानवीर लाखे का जन्म वि० सं० ९१२ श्रावण शुक्ला सप्तमी को "सोनल" रानी के गर्भ से हुआ था। इसका पिता **फूल** था जो जाम **घोड़** का पोता था। इस हिसाब से लाखा ने ९१२ से १०३६ तक अर्थात् १२४ वर्ष की उम्र पाई। संभव है कि इतनी बड़ी उम्र में लाखा जीता रहा हो और युद्ध के योग्य रहा हो। यह बात विचारणीय है। यदि लाखा का वि० सं० १०३६ में मारा जाना ठीक है तो, जैसा कि ऊपर जेहल के पिता भारा का जो समय ( ११४० से ११८८ ) लिखा है, ( अनुमान से ) जेहल का उसके पीछे, छः सौ से भी बहुत अधिक पीछे, समय आता है। अर्थात् लाखा ११वीं शताब्दी में मरा और जेहल १७वीं शताब्दी में मरा। और अपने पूर्वज लाखा की सी ख्याति अपने दानवीरत्व से पाई। जेहल का अपने पिता के जीवन-काल में मरना प्रसिद्ध है, इससे वह ११८८ के पूर्व ही मरा था। यह निःसंदेह सिद्ध होता है।

लाखा के जन्म और मरण के संबंध में रासमाला के गुजराती अनुवाद में दीवाणभाई "रणछोड़जी" ने, प्रथम भाग के पृ० ५४ तथा पृ० ८३ फुटनोटों में, यही निष्कर्ष निकाला है जो श्री ओझाजी ने "समालोचक" में प्रकाशित किया है।

अर्थात् लाखा सीयाजी के हाथ से नहीं मारा गया था। उसके समय में और सीयाजी के समय में २५० वर्ष से अधिक का अंतर है। लाखा तो **झाटकोट** की लड़ाई में मूलराज के हाथ से, सन ईस्वी ९७९ ( संवत् वि० १०३६ ) में, मारा गया। लाखा तो ई० सं० ८५५ में जनमा था और सन ९७९ में **सवा सौ वर्ष** १२५ की आयुष्य भोगकर मूलराज के हाथ से ही मारा गया था। सवा सौ वर्ष की आयु का बुड्ढा लाखा युवा अवस्थावाले मूलराज से लड़ा यह भी एक विचित्र ही कथा जानिए। इतने जर्जरीभूत वृद्ध पुरुष को पुरुषार्थी मूलराज ने मारा इसमें उसकी कुछ भी बड़ाई नहीं है।

निदान ऐसे दानवीर युवराज जेहल ( जेसल-जेहा ) का यश-गान ऐसे महाकवि बाँकीदासजी ने बड़े ओज भरे शब्दों में किया है। इसको ध्यानपूर्वक पढ़ने से भारतवर्ष के क्षत्रियों के दान का माहात्म्य, चारण कवियों की दानियों की प्रशंसा करने की शैली, जेहल और उसके पूर्वजों की उदारता का दिग्दर्शन बहुत ही सुंदर रूप में हमारे सम्मुख हो जाता है। इसके कई एक दोहे और आख्यायिका-मय वाक्य बड़े ही महत्त्व के हैं जिनको पढ़कर पाठक आनंद प्राप्त करेंगे। यहाँ विस्तार-भय से उनका लिखा जाना उचित नहीं समझते हैं।

---

## ( २ ) कायरबावनी

इस ग्रंथ में कविराजाजी ने ५४ दोहों में उन अधम, जातिद्रोही, कुलहीन, नमकहराम, कपटी एवं खुशामदी पुरुषों का वर्णन किया है जो अपने स्वामी की झूठी खुशामद कर-करके अपने पेट की आग को शांत करने में तत्पर रहते हैं, और युद्ध अथवा अन्य विपत्ति के समय सर्वप्रथम दुम दबाकर नौ-दो ग्यारह हो जाते हैं। ऐसे निर्लज्जों के लिये बाल्हादासजी के बाँके ( तीखे ) बाण वास्तव में बड़े तेज और पैने हैं जिनका वार कभी खाली नहीं जाता और वे सीधे ही हृदय पर जाकर लगते हैं। कविराजाजी ने ऐसी बारीक मारभरी चुटकियाँ ली हैं जिनको सुन-पढ़कर ऐसे पुरुष अवश्य लज्जित होंगे और अपने कर्तव्य पर पश्चात्ताप करेंगे।

ग्रंथ के आरंभ में ईश्वर-स्तुति करके कायर का लक्षण बताया है—

"आग न जागै आँखियाँ, तिणमिर दीधाँ नंत।
पलपल मुख पुलकावणाँ, कायर ही उचकंत" ॥

आगे कायरों की युद्धादि में अनुपयोगिता और इसी लिये इनका बहिष्कार उपयुक्त समझकर कवि ने कैसा अच्छा कहा है :—

"कंथ म राखो कटक में, नर कायर निरलज्ज।
काला बलदां काढ़जै, काँकल जीपण कज्ज" ॥

और कायरों की निरर्थकता कैसे अच्छे शब्दों में बताई है—

"लाखाँ सठ दे लीजिए, पंडित गुण भरपूर।
कायर लाखाँ बेचकर, साहिब! लीजै सूर" ॥

कहीं कहीं उत्तम उपदेश और चोज भरे वचन भी दोहों में आ गए हैं। यथा—

"भेष लियाँ सूँ भगत नँह, है नँह गहणाँ हूर।
पोथी सूँ पंडित नहीं, सस्तर सूँ नँह सूर" ॥

"बादल ज्यूँ सुरधनुष बिण, तिलक बिना द्विजपूत।
बनो न सोभै मोड़ बिन, घाव बिना रजपूत" ॥

कायरों का उपहास भी खूब किया है। यथा—

"भागल भारथ भीड़ में, बाणी सह बिसरंत।
मुख बापूड़ा मावडो, भाईडा भाखंत" ॥

"पैलो खोसे पाघडो, हँसे दिखालूँ दंत।
कायर मोनै क्यों कहै, सुद्ध सुभावाँ संत" ॥

"भारथ मत कर भामणी, मो भारथ नँह मेल।
वापी कूप बताव बिस, कैकर म्हाँसूँ केल" ॥

इस बावनी में अनेक दोहे **अर्थ**-चमत्कार के हैं। यथा—

"अदताँ केरी अरथ ज्यूँ कायर री किरमाल।
कोउ प्रकारां **कोस** सूँ, नँह पावै नीकाल" ॥

नोट—यहाँ कोस ( कोश ) शब्द में श्लेष है सो बड़ी उत्तमता से दोनों ओर अर्थ देता है।

"मंजन करै मधोर मनु, सूरां सारां धार।
कायरडा मंजन करै, आँसू धार मझार" ॥

इसमें भी धार शब्द श्लेषांश-युक्त यमक से चमत्कृत है।

"कायर थाका दौड़कर, ससि सूँ करै पुकार।
म्रग ज्यूँ मुझ बसावजै, मंडल नैंण मझार" ॥

नोट— इस दोहे की उक्ति में यह चतुराई है कि व्यंग से उस कायर को कलंक बता दिया है। मृग शब्द से दोनों ध्वनियां झलकती हैं। एक तो रण से मृग की तरह जल्दी भागना और फिर कलंकी चंद्रमा की शरण में जाकर खुद उसका कलंक बनने की इच्छा प्रकट करना।

यह ग्रंथ बाँकीदासजी ने वि० सं० १८७१ की श्रावण शुक्ला द्वितीया को बनाया था, जैसा कि इस दोहे से प्रकट है—

"एकोतरै अठारसै, श्रावण दुतियक स्वेत।
बाँके ग्रंथ बनावियो, कायर कुजस निकेत ॥"

( ३ ) झमाल राधिका—सिखनख-वर्णन

यह ग्रंथ राधिकाजी के सिख-नख-वर्णन में है अर्थात् राधिकाजी के मस्तक से लगाकर चरणारविंदों के नखों तक का वर्णन बड़ी सुंदरता से अनेक रूपकों में अर्थात् अलंकारों से अलंकृत है। एक तो बाँकीदासजी की चोज और चमत्कार भरी उक्ति फिर छंद भी उन्होंने उपयुक्त लिया है

अर्थात् 'झमाल', जिसमें वर्णन के लिये गुंजायश और भाव निदर्शन के लिये छंद की ढाल सहायक हुए हैं। कवियों में सिखनख वा नखसिख का वर्णन करना एक उत्तम शैली सी है। संस्कृत के कवियों में भी बहुतों ने नखसिख कहे हैं। इसी तरह भाषा में भी संस्कृत का अनुकरण करके इस चाल को निभाया है, और अनेक कवियों ने इसमें नाम पाया है। उर्दू के कवियों ने भी "सरापा" लिखकर अपने अपने काव्यों की छटा को बढ़ाया है। डिंगल भाषा में बाँकीदास-जी के से नख-सिख बहुत कम हैं। बाँकीदासजी के इस प्रकार की कविता करने से डिंगल साहित्य की शोभा बढ़ी है। कवि ने राधिकाजी का सिख-नख कहकर एक कार्य से दो फल पैदा किए हैं। एक तो श्रीराधिकाजी का सर्वांग ध्यान उनके उपासकों के लिये सर्वांग-सुंदरता से बन गया, दूसरे नायिकाभेद में नायिका के सब अंगों की प्रशंसा अनेक उपमाओं और वर्णनों की विभिन्नता से प्रदर्शित हो गई। यों काव्य का एक अंग मनोहरता के साथ इस साहित्य में उपस्थित हो गया। इस काव्य में अनेक छंद बहुत अच्छे आए हैं, और उनमें अनेक भाव और अनेक वर्णन भी बहुत उत्कृष्ट हैं। ग्रंथ के अंतिम छंदों में युगल स्वरूप का भी वर्णन आया है जो बड़ा सुंदर है, और आशा है कि भक्त पाठकों के मन को आनंद प्रदान करेगा। कवि का वर्णन ऐसा ( अनेक छंदों में ) पाया जाता है कि उनका हृदय भी प्रेम वा भक्ति

से सराबोर था। सच है बिना ऐसे रंग में रँगे ऐसी उक्तियाँ कैसे पैदा हो सकती हैं।

यह ग्रंथ कवि ने 'झमाल' छंद में लिखा। झमाल छंद डिंगल भाषा का छंद है। इसका लक्षण मंछ कवि रचित 'रघुनाथ रूपक' में दिया है वह विस्तार से पुस्तक के अंतिम छंद के नोट में लिखा गया है। स्पष्ट है कि एक दोहा और एक चंद्रायणा छंद से यह बनता है। दोहे और चंद्रायणे में सिंहावलोकन है, अर्थात् दोहे का अंतिम शब्द चंद्रायणे के आदि में भी आता है।

## ( ४ ) सुजसछत्तीसी

यह ग्रंथ यशस्वी, वीरों और दातारों की प्रशंसा में और कृपणों और अनुदार पुरुषों की निंदा में है। इसमें ३४ दोहे और चार सोरठे हैं। सोरठे संख्या ६, ७ १० और २२ हैं। इसमें कवि ने सुयशवाले पुरुषों की सराहना करके अनुदार पुरुषों की निंदा से यह शिक्षा दी है कि सुकृती, परोपकारी, त्यागी, गुणियों के समान करनेवाले, यश के प्रेमी, अपना नाम स्थिर रखने का इच्छा करनेवाले, जो पुरुष हैं वे ही संसार में मरने पर भी अमर रहते हैं और इनके विरुद्ध स्वभाववाले कायर, कापुरुष, अनुदार, अदातार पुरुष जीते ही मरे बराबर हैं। न वे संसार को चाहते हैं, और न संसार उन्हें चाहता है। अतः सुकृत के लिये ही उत्तेजना

इस छत्तीसी का परम ध्येय है, और यश-प्राप्ति के लिये रोचक वाक्य और अपयश के त्याग के लिये भयानक वाक्य इस शिक्षाप्रद काव्य में कवि ने बड़ी चातुरी से धरे हैं, जिन्हें समझते ही मन पर बड़ा प्रभाव होता है।

कैसा अच्छा कहा है कि—

"पंगी गंग प्रवाह, निरमल तन कीधा नहीं।
चित क्यूँ राखै चाह, तिके सरग पावण तणी" ॥

"कृपणाँ जस भावै कठै, विधि विमुखाँ नँ वेद।
बाका भोजन नँह रुचै, ज्यांरै वप ज्वर खेद" ॥

"आलस वालो मंगणाँ, उर मंगणाँ उदार।
वंक उदाराँ विसव में, वालो जस विस्तार" ॥

"मच्छारै जल-जीव जिम, सबजी तणौ सदीव।
अदताराँ धन जीव इम, जस दाताराँ जीव" ॥

बाँकीदासजी का यश की महिमा का निश्चय नीचे के दोहे से कैसा अच्छा प्रकट होता है—

"हुवै जेम हर हंस सूँ, बासर कमल विकास।
एम धरम जस है उभै, दत सूँ बाँकीदास" ॥

अपने इस ग्रंथ के वास्तविक उद्देश्य को यों प्रकट किया है—

"सुदतो इणनूँ साँभलै, अमी नजर सूँ ईख।
कृपणाँरा इणमें कुजस, सुजस छतीसी सीख" ॥

कवि ने दृष्टांत के लिये बड़े बड़े दानियों के नाम देकर अपने विषय को प्रकट किया है। यथा—श्रीरामचंद्रजी, सिंध

का ऊनड़, जगदेव परमार, हातिमताई, कच्छभुज का जेहल कुमार और वीर विक्रमादित्य इत्यादि, जिनके नामों से ग्रंथ विभूषित हुआ है। ये लोग जग में प्रातःस्मरणीय हुए हैं वस्तुतः त्यागी का दर्जा ही सबसे ऊपर है और वही अपने त्याग के कारण ही संसार में स्मरण किया जाता है और उसके अनुकरणीय, यशो-धवल सच्चरित्र से जगत् में अन्य पुरुष भी वैसे ही होना चाहते हैं।

## ( ५ ) संतोषबावनी

५५ दोहे-सोरठों में संतोष की महिमा और असंतोष और लालच की निंदा वर्णन की गई है। संतोषरूपी सुरतरु का माहात्म्य भारतीय धर्मों में सर्वत्र गाया गया है। यह संतोष शांत और त्यागी, ब्रह्मनिष्ठ, महान आत्मा पुरुषों के लिये अमृत समान है इसमें तो कहना ही क्या है, परंतु संसारी संग्रह-निरत पुरुषों की भी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा में वृद्धि करनेवाला गुण होना है। बाकीदासजी ने इस ग्रंथ के मंगलाचरण में ही वस्तु-निर्देश के साथ भगवान् से प्रार्थना की है सो दोहा बड़ा चमत्कारी है। इस ग्रंथ के कई दोहे बड़े अच्छे हैं, जो संतोष-प्रेमी पुरुषों के याद रखने लायक हैं। यथा—

"गह चढियाँ संतोष गज, धर पड ज्याँनें धोक।
चढ़ियाँ ज्याँनूं चहरजे, लालच गरदभ लोक" ॥

"मोल मंगाडे चंद्रमण, दहण सुथंभण दाह ।
दाह हिए लालच दहण, जतन न थंभण जाह" ॥
"हेकरती नँह हालियेा, मोनो रावण माथ ।
लेजावण लेाभी करै, आथ माथ अममाथ" ॥
"ज्यारै खाक विछावणा, ओढणनूँ आकास ।
ब्रह्म पाेष संताेष वित, पूरण सुख त्याँ पास" ॥
"मा पुरुषाँ संताेषियाँ, खाणाँ जवहर खाँण ।
बेलाँ चित्राँ वेलड़ी, पारस सयल पखाँण" ॥

यह ग्रंथ बाँकीदासजी ने फागुन सुदी १३ सं० १८७८ वि० में बनाया था । यथा—

"अट्ठारै सै अठंतरे, मोजी फागण मास ।
सुद तेरस संताेषगुण, बरणे बाँकीदास" ॥

---

## ( ६ ) सिधराव-छत्तीसी

इस सिधराव-छत्तीसी में कविराजा बाँकीदासजी ने अन्हिलवाडा गुजरात देश के परम प्रतापी राजा "सिद्धराज जयसिंह" की शूर-वीरता, विजय, दातारी आदि का यश वर्णन किया है । यह छोटा सा ऐतिहासिक काव्य है, जिसमें भारतवर्ष के एक महा साहसी और विजयशाली अधिपति की कीर्त्ति का गान है ।

सिद्धराज जयसिंह राजा "कर्ण" चालुक्य वा सोलंकी का पुत्र था। इनकी वंश-परंपरा और संवत् रासमाला में इस प्रकार दिए हैं—

| नाम | राज्यारोहण | स्वर्गवास |
|---|---|---|
| मूलराज | ९९८ | १०५३ |
| चामुंडराज | १०५३ | १०६६ |
| वल्लभसेन | १०६६ | १०६६ |
| दुर्लभसेन | १०६६ | १०७८ |
| भीमदेव प्रथम | १०७८ | ११२८ |
| कर्ण | ११२८ | ११५० |
| सिद्धराज जयसिंह | ११५० | ११९९ |

इस सिद्धराज जयसिंह के पश्चात् प्रसिद्ध **कुमारपाल** राजा हुआ। "कुमारपालचरित" इसी के नाम पर है जो एक अति प्रसिद्ध महाकाव्य है।

इस सिद्धराज जयसिंह के जन्म के बाबत "रासमाला" में इस प्रकार लिखा है—"कर्णदेव के पश्चात् गद्दी का वारिस होनेवाला कोई पुत्र नहीं था, इससे वह प्रायः चिंतित रहता था। एक दिन प्रातःकाल कर्णराज दरबार में बैठा हुआ था तब वहाँ एक चित्रकार उपस्थित हुआ। उसने कर्णदेव को कई चित्र दिखाए। उन चित्रों में एक चित्र को—जिसमें एक राजा के आगे लक्ष्मी नृत्य कर रही है और राजा के पास में एक षोडशवर्षीया कन्या बैठी हुई है—देखकर बड़ा प्रसन्न

हुआ और चित्रकार से पूछा कि यह चित्र किसका है। चित्रकार ने कहा कि दक्षिण में चंद्रपुर एक नगर है। वहाँ का राजा जयकेशी है। यह कन्या उसी की पुत्री है। इसका नाम "मीनलदेवी" है। अनेक राजकुमारों ने इससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की, किंतु यह कहती है कि जो मुझसे रूप और गुण में अधिक होगा उससे मैं विवाह करूँगी। इसके लिये कई मनुष्यों ने यत्न किए किंतु सफलता प्राप्त नहीं हुई। एक दिन किसी चित्रकार ने आपकी छवि इसे दिखाई, जिसे देखकर यह मोहित हो गई। अपने माता-पिता से कहा कि मेरा विवाह कर्णराज के साथ कर दो। वह आपके विरह में बहुत दुखी हो रही है। उसने मुझे आपके पास गुप्त रूप से भेजा है और जयकेशी की भी इसमें संमति है। यह कहकर उस चित्रकार ने स्वर्ण, रत्न तथा और वस्तुएँ जो जयकेशी ने दी थीं कर्णदेव के आगे रखीं। राजा कर्ण ने उन्हें स्वीकार कर लिया। इसके बाद तुरंत ही मीनलदेवी को ब्याहने के लिये अन्हिलवाड़े गए। वहां विवाह हो गया। राजा ने उसे पट्टमहिषी स्थापित की। किंतु किसी कारणवश कर्णदेव उसके महलों में नहीं गए। इससे उसे बहुत दुःख हुआ। कुछ समय बाद राजा एक नटी पर मोहित हो गया। राजा ने उससे एकांत में मिलने का वादा कर लिया। यह बात राजा की माता और मंत्री मुंजल को ज्ञात हुई, तो उन्होंने कपट से नटी के स्थान पर

मीनलदेवी को वहाँ भेज दिया। वहां से राणी सगर्भा लौटी और लौटते समय युक्ति से राजा से राज-मुद्रा ले आई। राजा को कुछ भी हाल मालूम नहीं हुआ। अंत में इसका राजा ने पश्चात्ताप बहुत किया, और प्रायश्चित्त करने को मात नग्न पुत्तलियों से आलिंगन करना चाहा किंतु प्रधान के भेद खोलने पर राजा को शांति मिली। इस गर्भ से प्रतापी सिद्धराज जयसिंह का जन्म हुआ।"

कुछ वर्षों के बाद राजा कर्ण का स्वर्गवास हो गया। इस समय सिद्धराज बहुत छोटा था। राज्य का कार्य कर्ण की माता "उदयमती" के भाई मदनपाल के हाथ में चला गया। यह बड़ा दुष्ट था। अतः "सीतू" नामक प्रधान ने बालकराजा को वश में करके मदनपाल को उसी के आदमियों द्वारा मरवा दिया। इसके बाद सब राजसत्ता मीनलदेवी के हाथ में आ गई। मदनपाल के समय में सिद्धराज ने समुद्र तक त्रिभुवनपाल की सहायता से—जो कर्ण के भाई क्षेमराज का पौत्र था—विजय प्राप्त की। अपनी माता के साथ सोमेश्वर की यात्रा करने को कुछ वर्षों पीछे गया तो पीछे से मालवे के राजा यशोवर्मा ने इसके राज्य पर चढ़ाई की। लौटने पर एक तालाब ( जिसका नाम सहस्रलिंग था ) का काम पूर्ण करके इसने थोड़े समय पीछे यशोवर्मा पर चढ़ाई की और उसको बंदी करके ले आया। यह लड़ाई बारह वर्ष तक चली थी, जिसके अंत में यह विजय प्राप्त

हुई थी। सिद्धराज ने एक यह काम बड़ा पुण्य का किया था कि जो लुटेरे यात्रियों को लूट लिया करते थे उन सबको मारकर साफ कर, यात्रियों का दुःख निवारण कर दिया। और भी अनेक पुण्य-कार्य इसने किए। मूलराज के बनाए पुराने जीर्ण शिवालयों, रुद्र महाकाल आदि के मंदिरों के जीर्णोद्धार किए और रुद्र महाकाल के पुजारियों को कष्ट देनेवाले बर्बर लोगों को जीतकर अपने वश में किया। इसके पश्चात् सोरठ जूनागढ़ के राजा 'खेंगार' को युद्ध में मारा; क्योंकि इसने किसी कुम्हार के घर पाली हुई 'राणकदेवी' नामक कन्या से जबरदस्ती विवाह कर लिया था। इस राणक-देवी का विवाह सिद्धराज जयसिंह से होनेवाला था। सिद्ध-राज जयसिंह ने सोरठ, कच्छ उत्तर में अचलेश्वर, चंद्रावती से आबू तक पूर्व में मालवा और दक्षिण में यहाँ तक विजय प्राप्त कर अपनी अधीनता में स्थापित कर दी थी कि कोल्हापुर का राज्य भी उससे भयभीत रहने लगा।

सिद्धराज की माता भी बड़ी धर्मात्मा थी। पुत्र भी वैसा ही पुण्यात्मा था। बड़े बड़े धर्म और पुण्य के काम किए। अनेक कुएँ, बावड़ी, तालाब, मंदिर बनाए। ब्राह्मणों की बहुत रक्षा की और दानादि भी दिए। इससे इसकी बहुत ही प्रशस्ति हुई। "मानसरोवर" तालाब, जिसका नामोल्लेख इस ग्रंथ के मंगलाचरण में आया है, इसकी माता का बनाया हुआ है।

चौहाण पृथ्वीराज द्वितीय का उत्तराधिकारी सोमेश्वर सिद्धराज जयसिंह का दौहित्र था क्योंकि सिद्धराज की पुत्री कांचनदेवी अर्णोराज को ब्याही थी और उसने अपने नाना सिद्धराज ही से शिक्षा पाई थी।

( भारत के प्राचीन राजवंश—रेऊ का—१ भाग, पृ० २५८ तथा पृ० २६० )

रासमाला गुजराती ( पृ० १५४ ) में लिखा है कि सिद्धराज जयसिंह ने महाराष्ट्र, तिलंग, कर्णाटक, पांड्य आदि राज्य अपने वश में किए थे। इन विजयों के विषय में आगे चलकर म० म० ओझा श्री गौरीशंकरजी की तहकीकात का सार, उनके प्रकाशित कराए हुए निबंध "सिद्धराज जयसिंह" पर से खींचकर पाठकों के विनोदार्थ हम देते हैं। उससे उस पराक्रमी राजा के संबंध में अनेक आवश्यक और उत्तम बातें ज्ञात हो जायँगी। जिनको विस्तार से जानना हो वे उक्त पुस्तक को वा फार्बस साहिब की रासमाला वा गुजरात के अन्य इतिहास अवलोकन करने का श्रम उठावें।

सिद्धराज जयसिंह के संबंध में ओझा गौरीशंकरजी से हमने पूछा तो उन्होंने कृपा करके अपनी रची हुई पुस्तिका "( १ ) सोलंकी राजा जयसिंह ( सिद्धराज )" भेजी, जो "नागरीप्रचारिणी पत्रिका" में भी उन्होंने प्रकाशित कराई थी। इस लेख में प्रसिद्ध ओझाजी ने बड़ी तलाश और ढूँढ़ से सिद्धराज का वृत्तांत लिखा है। इससे बड़ी ही सहायता

मिली और बहुत से भ्रम निवारण हो गए तदर्थ हम उनके बहुत ही कृतज्ञ होते हैं। उपरोक्त हमारे लेख और इस पुस्तिका को मिलाकर, बाँकीदासजी के "सिद्धरावछनीसी" के अंदर आई हुई बातों के अभिप्राय को स्पष्ट करनेवाली वा बताने में सहायक बातों को भी हम यहाँ उल्लिखित कर देते हैं—(१) जयसिंह ( सिद्धराज ) के विरुद ( वा उपनाम गुणप्रकाशक अभिधेय ) ये हैं—'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर', 'परमभट्टारक', 'त्रिभुवनगंड', 'बरबरकजिष्णु', 'अवंतीनाथ', 'सिद्धचक्रवर्ती' और 'सिद्धराज'। ( २ ) जयसिंह तीन वर्ष का था तभी उसका पिता कर्णदेव मर गया था। इस हिसाब से जयसिंह का जन्म-संवत् विक्रमी ११४७ होता है; क्योंकि जयसिंह का राज्य पाना सं० ११५० का लिखा है। ( ३ ) जयसिंह ने धारानगरी ( उज्जैन ) के परमार राजा यशोवर्मा को विजय कर अपने यहाँ कैद रखा और यह युद्ध १२ वर्ष रहा सो नरवर्मा के समय में तो प्रारंभ हुआ और यशोवर्मा के समय में अंत हुआ। ( ४ ) फिर मालवे का कुछ राज्य सिद्धराज ने यशोवर्मा को लौटा दिया। ( ५ ) जयसिंह सिद्धराज ने मालवे की लड़ाई में वीरता दिखानेवाले शूरवीरों को बहुत सा पुरस्कार दिया और उनमें सर्वश्रेष्ठ वीर 'नाडोल' के चौहान राजा आसाराज को स्वर्ण का कलश प्रदान किया था। ( ६ ) सिद्धराज का, इस विजय से ही, चित्तौड़ के किले तथा निकट प्रदेशों पर भी अधिकार हो

गया था। (७) मालवा-विजय का संवत् ११९१ और ११९५ के बीच का प्रतीत होता है। (८) अर्णोराज (अजमेरवाले चौहान) से युद्ध करने में जब सुलह हुई तब सिद्धराज ने अपनी पुत्री कांचनदेवी को उसे ब्याह दिया जिससे सोमेश्वर पैदा हुआ। (९) सिंध देश के प्रतापी राजा को सिद्धराज जीतकर बाँध लाया था। (१०) महोबे के राजा 'मदनपाल' पर सिद्धराज ने चढ़ाई की थी। (११) सिद्धराज ने बरबरक* को जीता था। (१२) 'सिद्धराज' नाम इसलिये प्रसिद्ध हुआ कि उसने श्मशान में बैठकर मंत्रों द्वारा सिद्धि प्राप्त की थी और उसके बल से हरएक बात में सफलता प्राप्त कर लेता था। इससे यह जादूगर भी मशहूर हो गया था। इस संबंध में (कुमारपाल-प्रबंध के अनुसार) एक रोचक कथा है—"जयसिंह का सिद्ध-चक्रवर्ती खिताब होना सुनकर हिमालय से उसकी सिद्धि की जाँच करने की इच्छा से योगिनियाँ उसकी सभा में आईं और उससे बोलीं कि हम तुम्हारी सिद्धियाँ देखने आई हैं। यह सुनकर राजा ने पहिले उनका आतिथ्य किया फिर एक दिन उनके समक्ष चमत्कार दिखलाने की इच्छा से वह एक चमकती हुई तलवार को मूँठ पर्यंत खा गया। वह तलवार बड़ी चतुराई से खाँड़ (शक्कर) की बनाई हुई थी, केवल उसकी मूँठ लोहे

* बरबरक—अरब देश के जंगली म्लेच्छों का राजा। "बाबरा भांड" शब्द यहीं से चला है।

की थी। इसके पीछे उसके मंत्री सांतू ने योगिनियों को बची हुई तलवार और मूठ खाने को कहा। परंतु उनसे कब खाई जा सकती थी ? इसलिये उन्होंने कहा कि राजेंद्र ! आप अपूर्व शक्ति को धारण करनेवाले हैं और 'सिद्धचक्रवर्ती' कहलाए जाने के सर्वथा योग्य हैं।"

( सिद्धराज ) जयसिंह के अनेक चमत्कार देखकर अज्ञान लोगों ने ही उसके वश में भूतों का आना मान लिया हो ऐसा नहीं है, किंतु कई विद्वान् लेखकों ने भी इसको सच माना है ऐसा पाया जाता है—१. सोमेश्वर 'कीर्त्तिकौमुदी' में लिखता है कि जयसिंह भूतों के स्वामी बरबरक को अधीन कर **सिद्धराज** कहलाया। २. अरिसिंह 'सुकृत-संकीर्त्तन' में लिखता है कि जयसिंह बरबरक के कंधे पर बैठकर आकाश में फिरता था। ३. हमचंद्र आदिकों ने भी उसकी सिद्धियों को माना है, यथा "द्व्याश्रयकाव्य" में आया है कि रत्नचूड़ नाग के पुत्र कनकचूड़ के सहायतार्थ जयसिंह ने वज्रमुख जाति की मक्खियों से भरे अँधेरे कुएँ में (जिसमें प्रवेश से मृत्यु हो जाती थी) प्रवेश कर कुएँ की खारी मिट्टी लाकर दी थी। (१३) जयसिंह ( सिद्धराज ) ने दक्षिण में कल्याण के सोलंकी राजा **'परमर्द्दि'** ( विक्रमादित्य छठा ) पर ( उससे लड़कर ) विजय पाई थी। ( १४ ) 'कीर्त्तिकौमुदी' में सिद्धराज का **गौड़ देश** पर चढ़ना भी लिखा है। ( १५ ) जयसिंह सिद्धराज की उदारता, धर्म-

परायणता, पराक्रम आदि गुणों के कारण उसकी प्रजा उसको बहुत चाहती थी और उसका गुजरात आदि देशों में सिधरा ऐसा अद्यापि नाम प्रसिद्ध है। (१६) वह कट्टर शैव था, तो भी वह दूसरे धर्मों की ओर उदारता दिखाता और उनका आदर रखता था। लाखों रुपए देकर अनेक जैन-मंदिर बनवा दिए। (१७) सिद्धराज रात्रि को घूम-फिरकर लोगों की सच्ची दशा जाना करता था, फिर उनको बुलाकर उनके सुख-दुःख के सारे हालात कह देता था। इन बातों से भी लोगों का विश्वास हो गया था कि वह किसी देवता का अवतार है।

(१८) फारसी पुस्तक 'जामे-उल-हिकायात' में लिखा है—कि खंभात नगर में अग्निपूजकों ने सुन्नी मुसलमानों की मसजिद जला दी। उसका झगड़ा होने पर ८० मुसलमान मारे गए। उसकी फर्याद जयसिंह के पास पहुँचने पर वह गुप्त रूप से खंभात पहुँचा और वहाँ सब सच्ची बातें जानकर लौटा। और तहकीकात करके अग्निपूजकों को दंड दिया। (१९) जयसिंह विद्याप्रेमी और गुणग्राही था। उसके समय में अनेक नामी नामी विद्वान् हुए और उन्होंने ग्रंथ लिखे। यथा हेमचंद्र सूरि ने बहुत से ग्रंथ रचे और उनमें से एक का काम सिद्धराज की यादगार में "सिद्ध हैम व्याकरण' रखा था। [ नोट—हेमचंद्र के ग्रंथों की सूची विद्वानों को ज्ञात ही है। और रासमाला (गुजराती) में भी सूची दी है। वहाँ देखें ]—श्रीपाल नाम पंडित ने, जो जयसिंह

सिद्धराज का दरबारी कवि था, 'वीरोचन पराजय' बनाया, तथा दुर्लभराज ने मेरु प्रशस्ति, वडनगर की प्रशस्ति, सहस्रलिंग की प्रशस्ति बनाई। वाग्भट्ट ने 'वाग्भट्टालंकार'। जयमंगलाचार्य ने 'जयमंगला शिक्षा'। गोविंदसूरि के शिष्य वर्द्धमान ने 'गणरत्न-महोदधि'। सागरचंद्र ने सिद्धराज की प्रशंसा में एक काव्य लिखा था। ( २० ) सिद्धराज जयसिंह विद्वानों की सभा कराता और उनके द्वारा धर्म सुनता और भिन्न भिन्न मतावलंबियों में परस्पर शास्त्रार्थ भी करवाता था।

( २१ ) जयसिंह ने कितने ही पुण्य के कार्य किए हैं। इसने अनहिलवाड़े में कीर्तिस्तंभ, सहस्रलिंग सरोवर, सत्रशाला मठ तथा दशावतार का मंदिर बनवाया। सिद्धपुर में रुद्रमहालय ( रुद्रमहाकाल ) का मंदिर तथा एक जिन-मंदिर भी बनवाया। उज्जयंत पर्वत पर नेमीश्वर के लकड़ी के बने हुए मंदिर के स्थान पर सौरठ देश के तीन वर्ष की आय से पाषाण का मंदिर बनवाया।

( २२ ) जयसिंह सिद्धराज के समय में 'अबू अब्दुल्ला महमूद' ने—जो 'अल्-इद्रिसी' नाम से प्रसिद्ध था—'नजहतुल् मुश्ताक' नामक भूगोल-संबंधी पुस्तक फारसी भाषा में लिखी। उसमें वह अनहिलवाड़े के विषय में लिखता है—**'नहरवाले** का स्वामी बड़ा राजा है उसे 'बलहरा' कहते हैं। उसके पास बड़ी सेना और हाथी हैं। वह बुद्ध की मूर्त्ति को पूजता और सिर पर सोने का मुकुट धारण करता है। वह बहुधा घोड़े

पर सवार होता और एक बार बाहर जरूर जाता है। उसकी अरदली में १०० औरतें रहती हैं, जिनकी पोशाक कीमती, हाथ-पैर में सोने-चाँदी के कड़े और केश घुँघराले होते हैं। यह औरतें राजा के सामने कई प्रकार के खेल करती और कृत्रिम लड़ाई लड़ती चलती हैं। मंत्री तथा सेनापति केवल उसी समय राजा के साथ रहते हैं जब वह किसी बागी से लड़ने जाता या अपने राज्य पर आक्रमण करनेवाले पड़ोसी राजा को भगाने के लिये चढ़ाई करता है।...नहरवाले व्यापारियों का रक्षण और सम्मान करते हैं और चावल, दाल, सेम की फली, मांस, मछली या मरे हुए जानवर खाते हैं और किसी पशु-पक्षी या जानवरों को मारते नहीं हैं।' (नोट—'नहरवाला' शब्द "अनहलवाड़ा का अपभ्रंश रूप है। और 'बलहरा' शब्द "वल्लभराज" का भ्रष्ट रूप है जो शब्द राठोड़ों के लिये मुसलमान ऐतिहासिक पुरुषों ने प्रयुक्त किया, और फिर यही शब्द बलवान् और प्रतापी राजा के साथ प्रायः लोगों ने लगाया।) (२३) सिद्धराज जयसिंह को अनेक उपाय, दान-पुण्य, अनुष्ठान, साधन करने पर भी कोई पुत्र नहीं हुआ। प्रत्युत शिव की, ध्यान में, उसको यह आज्ञा हुई कि उसके पुत्र नहीं होगा। अपितु उसके पीछे उसके चचेरे भाई कुमारपाल को राज्य मिलना बदा है। इस पर उसने कुमारपाल के पिता क्षेत्रपाल को मार डाला तब कुमारपाल प्राण बचाकर भागा और उसके (सिद्धराज के)

मरने पर कुमारपाल उसका उत्तराधिकारी हो गया। ( २४ ) 'प्रबंध-चिंतामणि' ग्रंथ में सिद्धराज का मरना वि० सं० ११९९ की मिती कातिक सुदी ३ का लिखा है।

( २४ ) सिद्धराज जयसिंह का वृत्तांत नीचे लिखे ग्रंथों में उल्लिखित है—( क ) हेमचंद्र का 'द्व्याश्रय महाकाव्य'। ( ख ) जिन मंडन कवि का 'कुमारपाल-प्रबंध'। ( ग ) जयसिंह सूरि ( वा चारित्र सुंदर गणि ) का 'कुमारपाल-चरित्र'।( घ ) सोमेश्वर के 'कीर्त्ति-कौमुदी' और 'सुरथोत्सव'। ( ङ ) अरिसिंह कृत 'सुकृत-संकीर्त्तन'। ( च ) मेरुतुंग-रचित 'प्रबंध-चिंतामणि'। ( छ ) राजशेखर सूरि रचित 'चतुर्विंशति-प्रबंध'। ( ज ) फार्बस साहिब का रचा 'रासमाला' तथा उसका गुजराती अनुवाद। (झ) गुजरात का इतिहास। (ञ) इलियट डासन साहिब की भारत की हिस्ट्री। (ट) दो फारसी पुस्तकों का ऊपर उल्लेख हो ही चुका है। (ठ) भाट चारणों की ख्यातें और छंद रचनाएँ। ( ड ) इनके अतिरिक्त गुजराती रासमाला में—'पट्टावली', 'अर्ली गुजरात' ( Early Gujrat ) आदि और ( ढ ) 'सोमप्रभ सूरि रचित 'कुमारपाल-प्रतिबोध' भी। अनेक ग्रंथों के प्रमाण पादटीपों में दिए हैं जिनके नामों का लिखना यहाँ अनावश्यक प्रतीत होता है।

सिद्धराज जयसिंह के समय के अब तक चार शिलालेख मिले हैं—( १ ) भद्रावती का वि० सं० ११९५ का मि० आषाढ़ सुदी १० का।

( २ ) उज्जैन से प्राप्त वि० सं० ११९५, जेठ कृष्णा १४ का।

( ३ ) दोहद गाँव से प्राप्त वि० सं० ११९६ का।

( ४ ) नलवाडा गाँव ( इ० बाँसवाड़ा ) का गणेश की मूर्त्ति के नीचे खुदा हुआ—संवत् पढ़ा नहीं जाता है।

गुजराती रासमाला ( चतुर्थ संस्करण, पृ० ४३ ) में लिखा है कि "मूलराज के क्रमानुयायी जितने राजा हुए उनकी टोप एक ताम्रपट के ऊपर है जो अहमदाबाद के भंडार में जड़ा हुआ है और यह १२०६ का है।" इसमें संस्कृत में मूलराज, चामुंडराज, वल्लभराज, दुर्ल्लभराज, कर्णदेव, जयसिंह सिद्धराज, कुमारपाल, अजयपाल, मूलराज दूसरा, भीमदेव, त्रिभुवनपाल पर संस्कृत पंक्तियाँ हैं जिनमें इन राजाओं के विरुद वा उपनाम वा गुणप्रकाशक विशेषण हैं। इसमें सिद्धराज जयसिंह के संबंध की यह पंक्ति है—

"पादानुध्यात - परमेश्वर-परमभट्टारक - महाराजाधिराज-अवंतीनाथ-त्रिभुवनगंड - बरबरकाजिष्णु - सिद्धचक्रवर्ति-श्री जयसिंहदेव"।

यह पंक्ति ही उपरोक्त ओझाजी के लिखे सिद्धराज की उपाधियों का आधार प्रतीत होती है।

सिद्धराज जयसिंह की विजयों के संबंध का एक श्लोक "कुमारपालचरित्र" के सर्ग १ के वर्ग २ में यह है—

"कर्णाट-लाट-मगधांग-कलिंग-वंग-
काश्मीर-कीर-मरु-मालव-सिंधुमुख्यान्।

देशान् विजित्य तरणिप्रमितैः सवर्षैः

सिद्धाधिपो निजपुरं पुनराससाद" ॥ ३८ ॥

अर्थ—करणाटक देश, लाट देश, मगध ( बिहार ) देश, अंग देश ( उड़ीसा ), कलिंग देश, बंग ( बंगाल ) देश, कश्मीर देश, कीर देश, मरु देश ( मारवाड़ आदि ), मालव देश ( मालवा ), सिंधु देश ( सिंध ) आदि को १२ वर्ष में जीतकर सिद्धराज ( जयसिंह ) अपने नगर (अन्हिलवाड़े पाटण) को लौटा।

परंतु इसको ओझाजी ने अत्युक्ति बताई है और कल्पना मात्र ही ठानी है, क्योंकि जयसिंह को बारह वर्ष तक मालवा जीतने में ही लगे थे। संभव है कि कवि ने सिद्धराज की विजयों की परिगणना ही की हो, कुछ बारह वर्ष पर्यंत मालवे से लड़ने को न कहा हो।

"चतुर्विंशति-प्रबंध" राजशेखर सूरि के रचे में 'मदनवर्म-प्रबंध' में लिखा है कि—सिद्धराज ने महाराष्ट्र, तिलंग, करणाटक, पांड्य, आदि राज्य अपने वश में किए थे, जैसा कि हमने ऊपर दरसाया है।

इन विजयों का संकेत बाँकीदासजी ने कई छंदों में किया है, यथा—

(१) छंद ८ में—**कोकन** सिरया कटक।

,, ९ ,,—दे **कोकन** तज दाप।

,, १२ ,,—सात देश **कोकन** लिया।

(२) छंद १० में—गाजै **जादव देवगिर** लीधा करन सुजाव ।

,, ११ ,,—भूपत **जादव** भाँग। गांजे तू सो **देवगिर** ।

(३) ,, १३ में—ने लच्छी **मरहट्ट** री ।

,, १४ ,,—**मरहट्टो** गहिलाव । कुच आधा...।

(४) ,, १५ ,,—**द्रविड़** कियो दहवाट तैं ।

(५) ,, १६ ,,—**आंध्र** करै दहवट्ट ।

(६) ,, १७ ,—**लांठै** लूटलियांह, कांठै नदी **कवेरजा** ।

( नोट—यह केरल और पांड्य देशों की बात है )

(७) छंद २१ में—अडर **मलयगिर** आवियो ।

( नोट—यह दक्षिण देश के देशों की बात है जहां चंदन के वृक्ष बहुत हैं । )

(८) छंद २७ में—संखमैंगा आगे अरज **केरलनाथ** करंत ।

(९) ,, ३१ ,,—राजा **सिंघलदीप** रे तान् दीध अर्सांग ।

(१०) ,, ३२ ,,—**सिंघल सिंध** जियांह ।

(११) ,, ३३, ३४ में—**भीमा**, घुनी पयस्विनी **गोदावरी** गहीर । इत्यादि ।

( नोट—इन दक्षिण की नदियों के नामों से उनके बीच या पास के आंध्र, महाराष्ट्र, कोल, केरल आदि देशों के विजय की बात प्रकट होती है । )

(१२) छंद ३७—में जीतो तू जैसिंगदे **दिषणतणां सौ देश** ।

उपरोक्त प्रमाणादि से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि बाँकीदासजी का यह ग्रंथ, ऐतिहासिक और वास्तविक घटनाओं के आधार पर भारतवर्ष के एक परम पराक्रमी, बुद्धिमान्, धर्मज्ञ राजा का वृत्तांत रूप है, और जो कुछ प्रशंसा उसकी कवि ने की है उसमें कोई ऐसी अत्युक्ति वा कल्पना नहीं है जो इतिहास के ग्रंथों वा आधारों से विरुद्ध हो। भारतवर्ष के इतिहास में सिद्धराज, मूलराज, कुमारपाल आदि सोलंकी राजा "त्रिविधवीर" ( सूरवीर वा युद्धवीर, दानवीर और धर्मवीर ) हुए हैं, और उनकी कीर्त्ति उनके उच्च गुणों की सच्ची कौमुदी है। इस प्रामाण्यता को देखते हुए महाकवि बाँकीदासजी का यह ग्रंथ डिंगल भाषा ही में नहीं भारतीय भाषाओं के साहित्य में एक बहुमूल्य रत्न कहा जाने के योग्य है, और इससे कवि की जानकारी, इतिहासज्ञता और वीरभक्ति का पूर्ण परिचय होता है। अतः बाँकीदासजी के ग्रंथों का प्रकाशन निष्फल नहीं है, अपितु परम लाभदायक और आवश्यक है। इस प्रकार इन अमितगुणपूरित ग्रंथों की रक्षा और प्रचार होने में कुछ हानि नहीं है। और इस ग्रंथमाला के संस्थापक और प्रचालकों का परिश्रम, द्रव्य और कार्य्य निरर्थक नहीं हुआ है।

( ७ ) वचनविवेकपच्चीसी

इस ग्रंथ में २८ दोहों में बाँकीदासजी ने अशुभ, अश्लील और असभ्य वाणी की निंदा और शुभ, सभ्य और मिष्ट

वार्णा की प्रशंसा की है और इन दोनों के व्यवहार करनेवालों के हानि-लाभ और गुणावगुण वर्णन किए हैं। यथा—

"जीकारो अमृत ज्युहाँ, भावै जगनूं भाल।
है रैकारो आक पय, गरल बराबर गाल" ॥
"बाँका विषफल नीपजै, ज्यूं विष तरवी डाल।
यूँ दुरजणरी जीभडी, रैकारो कै गाल" ॥

इसी तरह के कई छंद इस ग्रंथ में बहुत ही अच्छे हैं। देखिए यह दोहा क्या ही अच्छा कहा है—

"पारख कीधी पंडिता, सरब मिले संताह।
ज्यांरे जीभ भलाइयां, त्यांरे भाग भलांह" ॥

और भी देखिए—

"सज्जन बांधै पाळ सिर, सीसां छकियां गाल।
दुरजन फोडै गाल दे, प्रीत सरोवर पाल" ॥

अर्थात् जिस प्रेम के सरोवर को सज्जन अपना सर्वस्व लगाकर भी बांध देते हैं जैसे सीसा-गाल-तली का तालाब दृढ़ होता है वैसे ही उनका प्रेम-सरोवर दृढ़ होता है। परंतु उसको भी दुष्ट लोग एक गाली से फोड़ देते हैं।

यहाँ **पाल** और **गाल** शब्दों में श्लेष स्पष्ट है।

नीचे लिखी लोकोक्तियाँ तत्तत् दोहों में मनोरंजनकारी भासित होती हैं। शिक्षा के वाक्यों में इस प्रकार की लोकोक्तियों के आने की शैली उनके प्रभाव और बल को बढ़ा

देती है। यह कवि के लोकानुभव, साहित्यानुभव और भाषा की ज्ञानकारी का प्रमाण है। बाँकीदासजी बहुत ही अनुभवी पुरुष थे। अनेक शास्त्रों का गहन अभ्यास किया था। कई भाषाएँ जानते थे और संसार की देख-भाल तथा प्रकृति का पर्यवेक्षण करने में विलक्षण बुद्धि और योग्यता रखते थे। फिर, निज अनुभव में नीति और उपदेश को ऐसी स्पष्ट कविता में भर देते थे कि जिससे पढ़ने-गुननेवाले को सुगमता से उसका लाभ हो जाय।—

(१) "जग में नर हलका जिके, बोले हलका बोल"।

(२) "पैंड पैंड त्याँरा पिसँण, ज्यांरा कड़वा बैंण"।

(३) "थूं दुरजणरी जीभड़ी, दैकारा कै गाल़"।

(४) "गरल़ बराबर गाल़"।

(५) "गाल़ न ऊठै गूमड़ो"।

(६) "गाल़ लुगायाँ गावड़ा, नरमुख उचत न गाल़"।

(७) "करणघाव पर-कालजे जीभ प्रतख जम-दाढ़"।

(८) "जीकारो दा जगत नूं, रैकारो मत राख"।

(९) "**बाँका** मीठे बोलणँ, नाणाँ खरच न होय"।

(१०) "ज्याँरे जीभ भलाइयाँ, त्याँरे भाग भलाहँ"।

(११) "कुवचन मुख कहणों नँहीं, सुबचन कहणों सुद्ध।"

इस प्रकार और भी उक्तियाँ हैं, परंतु विस्तार अनावश्यक है।

## ( ८ ) कृपणपच्चीसी

जैसा कि नाम से ही प्रकट है, यह ग्रंथ कृपण ( अदातार, कंजूस, सूम, धनलोभी ) की निंदा में है। "बाँकीदास-ग्रंथावली" के दूसरे भाग में "कृपणदर्पण" ग्रंथ आया है। उसी के जोड़ का विषय का यह भी है। इसमें और उसमें कुछ भिन्नता भी है कुछ साम्य भी। प्रश्न यह होता है कि यदि कृपण-दर्पण पहिले बन गया था तो इसकी रचना की क्या आवश्यकता थी ? इसका उत्तर यह हो सकता है कि कवि ने उसको अलम् नहीं समझा अथवा किसी अन्य स्थल वा अवसर पर इसके छंदों की रचना कर डाली। यह भी संभव है कि यह कवि ने किसी प्रयोजन वा आवश्यकता से संग्रह कर दिया हो। यह भी असंभव नहीं है कि बाँकीदासजी की सहायता से उनके किसी भ्राता या शिष्य ने रच दिया या संग्रह कर दिया हो। क्योंकि इसमें स्वतंत्र कविता के साथ ही अन्य कवियों ( ईसरदासजी आदि ) के वाक्य भी हैं। यथा—

"अंगण भंगण आवियाँ उत्तर बेगो अप्प।
रज महाध्रम आतमा ए तीरथ ए तप्प" ॥

१३। कृपणपच्चीसी।

"रहो वीन र रामरस अनरथ वणो अलंत।
यहिज है ध्रम आतमा ऐ तीरथ औ तंत" ॥

१६। कृपणपच्चीसी

"रहै बलु भयो रामरस अनरस गणै अलप्प ।
एह महाधम आतमा ए तीरथ औ तप्प" ॥
३१। हरिरस ईसरदास कृत ।

"दरब किसी उपमा दियाँ तोसूँ है महकाय ।
तो सारीखो तुहिज तूँ अवर न दूजो काय" ॥
१४। कृपणपच्चीसी ।

"देव किसी उपमा दिवां ते मरज्यां मह काय ।
तूझ सरीखो तुहिज तू अवर न दूजो काय" ॥
१४। हरिरस ।

"सोना हंदी लंक सुण जग तरसे महजीव ।
जगतपंथ कायन गिणै गत थारी हयग्रीव" ।
१५। कृपणपच्चीसी ।

"क्रम अकरम विकरम करै तेजगवीया जीव ।
जगपति को जाणै नहीं गत थारी हयग्रीव" ॥
११। हरिरस ।

"करूँ अरज कमलालया त्यागो बार न लुज्ज ।
जिण दिन श्रो जग छाडस्यां तिणदिन तोसू कज्ज" ॥
१६। कृपणपच्चीसी ।

"नारायण हूँतो न भू इण कारण हरि आज ।
जिण दिन आजग छंडणो तिण दिन तोसूँ काज" ॥
१६। हरिरस ।

दोहा १९ प्रवतारचरित्र के दोहे की छाया है और २१वाँ पीपाजी की वाणी का है।

इस प्रकार बाँकीदासजी ने महात्मा ईश्वरदासजी के हरिरस का भी अनुकरण ता किया है। परंतु उन उच्च कोटि के भक्ति भरे वाक्यों की झलक इस सूम-सक्कड़ी कविता में लाना भी क्या औचित्य का आदर पा सकता है। अस्तु। फिर भी इस ग्रंथ के दोहे "कृपणदर्पण" के दोहों से नए और चुटीले भावों के हैं और कवि ने प्रयोजन ही से पृथक् ग्रंथ का निर्माण किया है। संपादकों को इस ग्रंथ की दो प्रतियाँ मिली थीं—(१) कविया मुरारिदानजी अयाचक जयपुरवालों की, (२) दूसरी जोधपुर के सीताराभजी लालस की भेजी। इस दूसरी प्रति में अशुद्धियाँ मिलीं। उनको प्रथम से मिलाकर तथा संपादकों ने अपनी बुद्धिमानी तथा कविवर हिंगलाजदानजी की सहायता से यथासंभव शुद्ध किया है। पाठांतर भी यथास्थान दिए हैं। दोहा सं० १, ३, ७, ११, १७, २६ और २९ ऐसे हैं जिनके संशोधन में विशेष ऊहापोह करनी पड़ी है। कोई कोई दोहा ऐसा भी है कि मानों किसी अन्य की रचना हो। परंतु यह सारी कठिनाइयाँ उस समय मिटेंगी जब बाँकीदासजी के घर में की प्रति निकल आवेगी।

( ९ ) हमरोटछत्तीसी

इस "हमरोटछत्तीसी" में **"उमरकोट"** की संक्षिप्त हकीकत, प्रशंसा और तवारीखी बात है और वहाँ के जल-

वायु, मनुष्यों और स्त्रियों की प्रशंसा है। ज्ञात ऐसा होता है कि बाँकीदासजी उमरकोट गए हैं क्योंकि कई बातें आखों देखी-सी वर्णित हैं। हमरोट = हमीरकोट। हमीर को उमर भी कहते हैं। अतः उमरकोट = हमीरकोट = हमरोट। अर्थात् हमीरकोट का **हमरोट** अपभ्रंश रूप है। यह **उमरकोट** ( जिसको कहीं कहीं अमीरकोट भी अँगरेजी पुस्तकों में लिखा है ) इस समय सिंध सूबे के **थरपैकर** जिले का एक प्रधान नगर है। पुराने समय में सिंध की राजधानी टट्टा (या नत्ता) था। इस समय सिंध में कराची शहर सबसे बड़ा है और कलक्टरेट का स्थान है। उमरकोट आजकल के भौगोलिक नक़शों में नहीं दिखाया जाता है परंतु ऐतिहासिक* वा प्राचीन संस्थिति के नकशों में दिखाया जाता है। अब इसकी आबादी करीब ५००० मनुष्यों के रह गई है। किसी जमाने में खूब बस्ती का था। यह नगर २५ कला २१ अंश उत्तर-अक्षांश और ६९ कला ४६ अंश पूर्वदेशांतर पर स्थित है। कोई कोई इसको अमरकोट लिखते हैं सो गलत है। हमरोट शब्द भी डिंगल का रूपांतर मात्र ही प्रतीत होता है। बादशाह अकबर का यहाँ

---

* नोट—Historical Atlas by Charles Joppen ( ऐतिहासिक एटलस चार्ल्स जोप्पन कृत ) और इस जैसे नकशों में उमरकोट दिया है। अन्य नकशों में नहीं मिलता है।

( उमरकोट के किले में, जो शहर से ½ मील है ) जन्म, हमीदा बेगम के गर्भ से, तारीख १४ शाबान सन् ९४९ हिज्री—मु० ता० २३ नवंबर बृहस्पतिवार सन् १५४२—की रात्रि को हुआ था जो पूर्णिमा थी। मानो हुमायूँ के अंधकार को मिटानेवाला पुत्र रूप चंद्रमा ही तब उदय हुआ था। हुमायूँ यहाँ पर शेरशाह सूर से चौसा—कन्नौज—के युद्ध में हारकर पंजाब और मारवाड़, जैसलमेर के रेगिस्तानों में मारा मारा फिरता-फिराता यहाँ आया तो राणा **परशाद** ने इसको शरण दी थी। किला छोटा होने से, राणा की सलाह से, २००० सवारों से और ५००० पड़ासी राज्यों की सेना से ठट्ठा और बक्खर पर राणा ने हुमायूँ को लेकर चढ़ाई कर दी थी। तीन दिन पीछे ही यह आनंद-समाचार रास्ते में ही मिले। वहाँ धनाभाव में प्रस्तुत कस्तूरी के नाफ़े को चीरकर अपने उमरावों को कस्तूरी ही बाँटी गई और दुआ की कि जैसे इसकी खुशबू फैले वैसे ही इस बालक का प्रताप भी संसार में फैले। यही दुआ क़बूल हुई और अकबर ऐसा ही यशस्वी पुरुष संसार में हो गया। जो शिलालेख उमरकोट में जमाया गया है वह भी कृत्रिम है—उसमें सन् गलत है; क्योंकि उसमें ९६३ का हि० सन् जो खुदा है वह अकबर के तख्तनशीनी का है, जन्म का नहीं। "आईने अकबरी" में ( १—३७६ पर ) जन्म तारीख रजब की १—मु० अक्टूबर १४ या १५—दी है, सो० सरिश्ताई

( आफ़ीशेल ) जन्म-दिन से टकराती होने की दी है। पूर्णिमा को जनमने के कारण अकबर का जन्मनाम "बद्रुद्दीन" रखा गया था जिसका अर्थ "दीन का उगता चाँद" होता है*। ३५ दिन पीछे बालक अकबर, उसकी माता आदि के सहित, उमरकोट के पास "जूँणा" नामी कस्बे के बाग में लाया गया जिसको हुमायूँ ने जीत लिया था, और वहाँ डेरे डालकर रक्षित अवस्था में टिक गया था, क्योंकि गर्म मुल्क था और रमजान के व्रतों के दिन भी आ गए थे। अकबर ने बड़े होने पर सदा ही अपने जन्म-स्थान को याद रक्खा यद्यपि इसकी जियारत करने को वह नहीं आ सका था।

उमरकोट में काल की गति से कई उथल-पुथल हो गई थीं। बलूच लोगों ने सिंध को ले लिया था। यह इलाका मारवाड़ के कब्जे में भी संवत् १८२७ में आ चुका था। यहाँ पर सोढ़ा राजपूतों की अमलदारी थी। उनकी निर्बलता देखकर **सराई** जाति के लुटेरों ने लूट-खसोट मचा दी थी। **टालपुरा** वंश के मुसलमानों ने वहाँ अपना अमल

* "स्मिथ" साहब रचित "अकबर का इतिहास" पृ० १३-१४-१५ तथा "मेलीसन" साहब का "अकबर"।—अकबर की जन्म-तिथि विवाद-ग्रस्त है। इसको पीछे से बजाय २३ नवंबर के १४ या १५ अक्टूबर माना गया क्योंकि ठीक तिथि याद नहीं रही थी कि समय आपत्तियों का था। इस पर स्मिथ साहब ने "इंडियन एंटीक्वेरी" में ( नवंबर सन् १९१५ के में ) बहुत विचार प्रकाशित किया है।—ह० ना०।

कर लिया था। राठोड़ों ने महाराजा **विजयसिंहजी** की आज्ञा से टालपुरों के मुखिया मीर **बीजड़** को हटाकर उमरकोट पर कब्जा कर लिया था। कुछ अर्से तक उमरकोट यों राठोड़ों के कब्जे में रहा था। फिर महाराजा **मानसिंहजी** के समय में, संवत् १८७० में, टालपुरे मुसलमानों ने उमरकोट के किले और जिले को जोधपुर से पीछा छीन लिया था।

(जगदीशसिंह-रचित "मारवाड़ का इतिहास", पृ० १७८-१९२-५००)

कहते हैं कि उमरकोट के गढ़ और शहर को अमरसिंह या **उमरा** पँवार जाति के सोढा ने बसाया। इनके सोढों के मुखिया की पदवी राणा थी। ये बड़े ही वीर थे और इनके दानी होने की प्रशंसा थी। कभी इन सोढों का बड़ा दिन प्रताप रहा था और सिंध देश में इनकी धाक पड़ती थी। इनके यहाँ सिंधी घोड़े अच्छे भी थे और संख्या में भी बहुत थे। घोड़ों का दान भी ये किया करते थे। **धाट** यह नाम उमरकोट के जिले की भूमि का भी है और यह भूमि अपनी सुंदर जलवायु, उपजाऊपन, दूध के पशुओं और रूपवती नारियों के लिये विख्यात रही है। इन रूप-लावण्यवाले स्त्री-रत्नों की शोभा का वर्णन ही 'हमरोट-छत्तीसी' के आगे के दोहों में बड़ी सुंदरता से वर्णित है। और बाँकीदासजी की काव्य-रचना-चातुरी और प्रतिभा का तथा शृंगार-रस-निरूपण की कला का अच्छा प्रमाण है।

बारहट कविया मुरारिदानजी ने इसकी टीका भी स्पष्ट और सरल कर दी है जिससे कवि के अभिप्राय का ज्ञान प्रायः यथार्थ होता है।

## ( १० ) स्फुट-संग्रह

इस संग्रह और इसमें के कुल गीतों की टीका के संबंध में प्रारंभ में नोट दिया गया है। अधिक लिखने की अब आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। हम महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकरजी ओझा, बारैठ सीतारामजी लालस, बा० जगदीशसिंहजी गहलोत, बारैठ मुरारिदानजी कविया, बा० महताबचंदजी खारैड, कवि हिंगलाजदानजी बारैठ आदिक विद्वानों के हृदय से कृतज्ञ हैं कि जिनकी कृपा और परिश्रम से यह तृतीय भाग और इसकी भूमिका संपादित हो सके हैं। इति।

जयपुर,
३० अगस्त सन् १९३३ ई०।

पुरोहित हरिनारायण

# विषय-सूची


| | | | |
|---|---|---|---|
| १—जेहल जस जड़ाव | ... | ... | १–१८ |
| २—कायरबावनी | ... | ... | १९–२९ |
| ३—झमाल नखशिख | ... | ... | ३०–४३ |
| ४—सुजस छतीसी | ... | ... | ४४–५२ |
| ५—संताप बावनी | ... | .. | ५३–६४ |
| ६—सिद्धराय-छतीसी | ... | ... | ६५–७४ |
| ७—वचन विवेक पच्चीसी | ... | ... | ७५–८० |
| ८—कृपण-पच्चीसी | ... | ... | ८१–८८ |
| ९—हमगट-छत्तीसी | ... | ... | ८९–९७ |
| १०—स्फुट संग्रह | ... | ... | ९८–१४५ |

# बाँकीदास ग्रंथावली

## तीसरा भाग

---

### ( १ ) राव जेहल जस जड़ाव

दोहा

धारापत जिम धारियाँ, धारा सहज सुभाव।
बारा भसम बैसांणजै, थारा भारा राव॥ १॥
ओदण विरचो बीनड़ो, हठ माटो खेहल।
नमणी खमणी छोड़ै नहीं, जोड़ै कर जेहल॥ २॥

(१) [illegible] बारा = [illegible] , यह [illegible] का [illegible] का पिता था।

(२) ओदण = [illegible] बीनड़ो = [illegible] माटो = [illegible] नमणी = नम्रता। खमणी = क्षमा। [illegible] पुत्र बड़ा दानी, उदार, [illegible] और यशस्वी हुआ [illegible]।

भावार्थ---चारण लोगों के क्रोध करने पर भी जेहल उनका विनय ही करता है। वह अपनी नम्रता और क्षमा को नहीं छोड़ता है और उनसे हाथ जोड़ता है।

तूठा दूधाँ वादला, तूठा देव मुरार।
जेहल आज जुहारिया, काछ नरेस कुँवार॥ ३॥
रीधो साथाँ रेणवाँ, जस गाथाँ जेहल्ल।
भारांणी बाथाँ भरे, आथाँ दिए अपल्ल॥ ४॥
भारांणी दुख भंजणो, गुण रंजणो गहीर।
जास खजानैं जगत रो, साहिब कीधो सीर॥ ५॥
तांत तणंका जसहका, मद प्याला मतवाल।
धोलहरां चमरां ढुलै, ऊ भारांणी भाल॥ ६॥
गुण जस गाजै सरग में, ऊनड़ लाखा भूप।
भांरांणी दाता भलो, राणी जायाँ रूप॥ ७॥

(३) तूठा = वर्षा हुई। तूठा = प्रसन्न हुए।

(४) रीधो = रीझना, प्रसन्न होना। साथाँ = समूह। रेणवां = चारणों से। भारांणी = भारमल का पुत्र। बाथाँ भरे = आलिंगन करना। आथा = धन। अपल्ल = बिना रोक।

(५) भंजणो = मिटानेवाला। गुण रंजणो = गुण से प्रसन्न होनेवाला। गहीर = गहरा, गंभीर। सीर = हिस्सा।

(६) तांत तणंका = तांत का बाजा: सारंगी आदि। जसहका = यश का शोर। धोलहरां = महल। चमरां = चामर। ढुलै = हिलते हैं। ऊ = वह। भाल = देखो।

(७) सरग = स्वर्ग। ऊनड़ = यह सिंध देश का बादशाह बड़ा दानी, वीर, उदार और यशस्वी था। इसने संपूर्ण सिंध एक चारण को दान दे दिया था। यह यादवों की जाड़ेचा शाखा का क्षत्रिय था। लाखा = यह जाममोड़ के गोत्र फूल का पुत्र था। इसकी कीर्ति गुज-

कहिया रेहा कूड़ नँह, वेहा बायक ग्रेह ।
जे जेहा जेहा नहीं, त्यागी केहा तेह ॥ ८ ॥
हूँ तो हत्थाँ भामणैं, बड़ा समत्थाँ वेह ।
ज्यों जेहा जादव जिसो, नर निरमियो नरेह ॥ ९ ॥
जेहा मेहा जगत सूँ, मत बिरचो सुख मूल ।
जीवाड़ै सारा जगत, ग्रै अविरच अनकूल ॥ १० ॥
पर मंडल पर दीप में, हद घर घर कथ हान ।
कीरतवर जेहा कुँवर, जाड़ेचा धर जान ॥ ११ ॥
नल रावव जुजठल नहीं, भू बीकम नँह भोज ।
है जेहो ऊनड़हरो, है नहँ कलू हनोज ॥ १२ ॥

रात क्या तमाम भारतवर्ष में फैली हुई थी । यह भी जाड़ेचा था । दाता = दानी । राणी जाया = राजकुमारों का । रूप = सुंदर स्वरूप ।

(८) रेहा = एक रेखामात्र, किंचित । कूड = झूठ । वेहा = विधाता, विधि । बायक = वचन । ग्रेह = ... । जे = जो । जेहा = जेहा राजकुमार; जैसा । केहा = कैसा । तेह = वह ।

(९) तो = तेरे । हत्थाँ = हाथों को । भामणैं = बलिहारी जाऊँ । वेह = विधि, ब्रह्मा । ज्यों = जिसने । निरमियो = बनाया । नरेह = मनुष्यों में ।

(१०) मेहा = मेघ । बिरचो = क्रोध करो । जीवाड़ै = जिलाता व पालन करता है । ग्रै = यह तो । अविरच = प्रसन्न रहने पर ही ।

(११) पर = दूसरों के । दीप = द्वीप । हद = बेशुमार । कथ = कथा । कीरतवर = कीर्ति प्राप्त करनेवाला । जाड़ेचा = यादव क्षत्रियों की एक शाखा । धर = पृथ्वी । जान = ज्याति ।

(१२) नल = निषध देश का प्रसिद्ध राजा । रावव = राघव...

मोज महण मूरत मयण, लोयण लाज अपार ।
जेहल राजकुँवार जिम, कुण अन राजकुँवार ।। १३ ।।
गढ़ गढ़ राजा गै गुड़ै, गढ़ गढ़ राजकुँवार ।
भुज जेहलनूँ भेटियां, ओ कोइक अवतार ।। १४ ।।
भेद खुलै षट भाष रा, बांणी चहूँ विचार ।
बीटाँणा षट बरण सूँ, जेहा राजकुँवार ।। १५ ।।
पाव धाव सिर पनगरै, धाव नाव धजराज ।
समपै भाराराव सुत, करन चाव जग काज ।। १६ ।।

रामचंद्र भगवान् । जुजठल = युधिष्ठिर, पांडु के बड़े पुत्र । भू = पृथ्वी । वीकम = प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य जिनका संवत प्रचलित है । ऊनड़ हरा = ऊनड़ का वंशज । कलू = कलियुग । हलोज = अब तक ।

(१३) मोज = रीझ, प्रसन्नता । महण = समुद्र । मयण = कामदेव । लोयण = नेत्र । कुण = कौन । अन = अन्य, दूसरा ।

(१४) गढ़ = किला । गै = हाथी । गुड़ै = पाखर । भुज = कच्छभुज (शहर का नाम) नूं = को, में । भेटियां = मिले । ओ = यह । कोइक = कोई

भावार्थ—किलों किलों में राजा, पाखर सहित हाथी और राजकुमार हैं किंतु जिसने कच्छभुज में आकर जेहल से भेंट की उसे ऐसा ज्ञात हुआ कि यह कोई अवतार है ।

(१५) षट = छहुं । भाष रा = भाषा के । चहूँ = चारों वेद । बीटांणा = घिरा हुआ । षट वरण सूँ = छहों वर्णों से, षट् वर्णों को षट् दर्शन भी कहते हैं । स्वामी गणेशपुरीजी ने अपने ग्रंथ 'वीर विनोद' में इनकी गणना यों की है—

'जति जोगि संन्यासिय जंगम है, दुज चारण ये षट् दर्शन हैं ।"

(१६) पाव = पैर । पनगरै = सर्प के, शेषनाग के । धाव = वेग ।

हव जादू जस बस हुवो, जग जाहर जेहल्ल ।
चारण चाहै ज्यूँ करै, भालै भारहमल्ल ॥ १७ ॥
ग्रून करै पट बरन पिण, कुँवर करै नँह क्रोध ।
भाराणी क्रन भोज ज्यूँ, पायो अचल प्रबोध ॥ १८ ॥
पाताँ जीवन पालगर, अनदाता आधार ।
जेहो भारहमल्ल रो, भावठ भंजणहार ॥ १९ ॥
कुढ़ता उडता कूदता, ओझकता वप आप ।
जेहा तोखै जाचणां, साहण इसा समाप ॥ २० ॥
साँठो अोलै हँस मिलै, पाता नँह ढक पल्ल ।
कर आदर साँठा कवा, जीमाड़ै जेहल्ल ॥ २१ ॥

नाव = नौका । धजराज = घोड़ा । समपे = देना है । करन चाव = जबरदस्ती, बड़ी इच्छा से ।

(१७) हव = अब । जादू = यादव । जाहर = प्रसिद्ध । चाहै ज्यू = मन इच्छित । भालै = देने ।

(१८) ग्रून = अपराध । पिण = परन्तु । भाराणी = भारमल का पुत्र । क्रन = कर्ण । ( महाभारतवाले )

(१९) पाताँ = चारणों का । जीवन = जीविका । पालगर = पालन करनेवाला । भावठ = उधारन, दिल का भाव, मनवांछित ।

(२०) कुढ़ता = शरीर समेटकर चलनेवाले । ओझकता वप आप = अपने शरीर की परछाईं को देखकर झिझकनेवाले । ( कुढ़ता उड़ता आदि साहण के विशेषण हैं । ) तोखै = संतोषता है । जाचणां = याचकों को । साहण = घोड़े । इसा = ऐसे । समाप = देकर ।

(२१) पातां = चारणों से । ढक = ढकना है । पल्ल = आँख

सूंम मिलै अन सहर में, सहर उजाड़ समान।
जो जेहा वन में मिलै, वनही राजसथान ॥ २२ ॥
जिम नागुण अवनी अमर, जिम हिरणांखी हार।
इम गढ़वा बांधा गलै, जेहल राजकुँवार ॥ २३ ॥
रामायण जहड़ा रचै, कवियण जस गुण कोय।
जेहा जसरा वायकाँ, तो पण अपत न होय ॥ २४ ॥
मुगत होण अभिलाष मन, जे कासी जावंत।
आथ तणो अभिलाष इम, इण भुजनूं आवंत ॥ २५ ॥
वेहा लिख खोटा वरण, रेहा हीन रहंत।
पात अछेहा धन लहै, जेहा धन जहवंत ॥ २६ ॥

पलक। नँह ढ़ाकै पलक = आँख नहीं छिपाता है। कण = नाज, अन्न। जीमाड़ै = जिमाता है, भोजन कराता है।

(२२) सूंम = कृपण, लोभी। अन = अन्य, दूसरे। उजाड़ = शून्य, सूनसान वन।

(२३) नागुण = यज्ञोपवीत, जनेऊ। अवनी अमर = ब्राह्मण। हिरणांखी = मृगनयनी। गढ़वा = चारण। बांधा = बांधे, तमाम को।

(२४) जहड़ा = जैसा। कवियण = कविजन। वायकां = वचनों से। तो पण = तो भी।

(२५) मुगत = मुक्ति। जे = जो। आथ = धन। तणो = का। इण = इस। भुज = कच्छभुज ( शहर का नाम )।

(२६) वेहा = विधि के, विधाता के। लिख = लिखे हुए। खोटा = बुरे। रेहा = रेखा। पात = चारण। अछेहा = अपार। धन = धन्य। जहवंत = यशस्वी।

जेहल वित दीधाँ बिना, नर ऊजलो न होय।
भाराथी लीधाँ भलम, जलहर साम्हो जोय ॥ २७ ॥
पातसाह राखै प्रसन, जेहा तो घण जांण।
मक्के मदीनें मारगां, ताठ सके कुण तांण ॥ २८ ॥
सीना गजां गुड़ावही, तीना वडा तुरंग।
श्री जेहल कीना अमर, में दीना तरलंग ॥ २९ ॥
तू पारस तू कलपतर, चिंतामण घण चाव।
सांमा इंद समंद तू, भारहमाल सुजाव ॥ ३० ॥

(२७) वित = वित्त, धन। ऊजलो = उज्ज्वल। भलम = भलाई। जलहर = बादल, मेघ। (मेघ वर्षा से पहले श्याम रंग के दिखाई देते हैं और वर्षा के पश्चात श्वेत दिखाई देते हैं। अतः दिए बिना मनुष्य उज्ज्वल (कीर्तिवान्) नहीं होता है। (कवि-समुदाय में कीर्ति का रंग श्वेत माना जाता है।) साम्हो = सम्मुख। जोय = देखो।

(२८) प्रसन = प्रसन्न, खुश। घण जांण = बहुत समझनेवाला। मक्के मदीनें = मक्का मदीना में मुसलमानों के तीर्थस्थान हैं। मारगां = मार्ग में, रास्ते में। ताठ सकै = छीन सकता है। कुण = कौन। तांण = खैंचकर, जबरदस्ती।

(२९) सीना = दानी। गजां = हाथियों को। तीना = तीन। तुरंग = घोड़े। अमर = मृत्यु-रहित अर्थात् उनके दान की महिमा रहेगी जब तक ये जीवित रहेंगे। तरलंग = चपल।

(३०) कलपतर = कल्पवृक्ष। घण-चाव = बहुत प्रसिद्ध। सांमा = राजा समो जो जाडेचा यादवों का पूर्वपुरुष गजनी का राजा था। उसके वंशज सामा कहाए। सुजाव = पुत्र।

मोताहल रहसी नहीं, हैवर हीर चमीर।
जेहलिया जातां जुगां, बातां रहसी वीर॥ ३१॥
अन थारो जस ऊजलो, जेहल दिन दिन जाय।
हिमकर तैं घट बध हुवै, हिमगिर गलजल होय॥ ३२॥
सांमा दाता दीठ सह, तो दीठां ओ तंत।
हाथ हेक कण चाँपियाँ, मणरी खबर पड़ंत॥ ३३॥
प्राणां नूँ तजियाँ पछै, जस सूँ जे जीवंत।
जेहा धर अंबर जितै, उणरो नँह हुै अंत॥ ३४॥
सायर जल कपिकेत सर, पंचाली चय चीर।
यांसूँ मोजां आपरी, बधनी जेहल वीर॥ ३५॥

(३१) मोताहल = मोती। हैवर = श्रेष्ठ घोड़ा। हीर = हीरा। चमीर = चामीर, स्वर्ण, सोना। जेहलिया = जेहा भारमली। जातां जुगां = युग व्यतीत होने पर। रहसी = रहेगी।

(३२) अन = अति, अधिक। थारो = तेरा। हिमकर = चंद्रमा। तैं = तो। घट बध = घटता बढ़ता है। हिमगिर = हिमालय। गल = पिघलकर।

(३३) सांमा = सामो या ससो के वंशज। दाता दीठ सह = सब दानियों को देखकर। तो = तुमको। ओ = यह। तंत = तत्व, सार, नतीजा। हाथ हेक कण चाँपियां = पकाने समय चावलों में से एक कण को दाबने से मन भर की खबर पड़ जाती है।

(३४) प्राणांनूँ = प्राणों को। पछै = बाद में। जस सूँ = यश से। धर = पृथ्वी। अंबर = आकाश। जितै = जब तक। उणरो = उसका।

(३५) सायर = समुद्र। कपिकेत = अर्जुन। सर = बाण। पंचाली = द्रौपदी। चय = समूह। यांसूँ = इनसे, उक्त वस्तुओं से। मोजां =

कवि पंडित गायक कथक, मंत्री गज भड़ मल्ल ।
तो दरबार जिता तिता, जग चावा जेहल्ल ॥ ३६ ॥
तूझ तुरंगाँ दान रा, हिमगिर तलहटियाँह ।
गावै गीत तुरंगमुख, जलरख जल-बटियाँह ॥ ३७ ॥
देस देस लाखा दुवा, जस थारो जेहल्ल ।
जावै पिण जावै नहीं, एह अछेरा गल्ल ॥ ३८ ॥
गीता नह तो गीतड़ा, छंद नहीं तो छंद ।
जप नह जपणो तूझ जस, मो घर भारहनंद ॥ ३९ ॥

दातव्यता । वधती = विशेष है, अधिक है। अर्जुन के बाण अनंत और अमोघ थे, जेहल की दानशीलता अपरिमित थी ।

(३६) कथक = कत्थक, नाचने-गानेवाला । भड़ = शूरवीर । मल्ल = योद्धा । तो = तेरे । जिता = जितने । तिता = उतने । चावा = प्रसिद्ध हैं ।

(३७) तूझ = तेरे । तुरंगां = घोड़ों का । तलहटियांह = तलैटी तक । तुरंगमुख = किन्नरगण । जलरख = यक्ष (वरुण के सिपाही)। जल बटियांह = समुद्रों तक, अथवा गुह्यक और सिद्धों तक । अर्थात तेरा जस सर्वत्र गाया जाता है—आसमुद्र आनाक यश फैल रहा है ।

(३८) लाखा = लाखा फूलाणी प्रसिद्ध जाड़ेचा वीर राजा जहल्ल का पूर्वज था । दुवा = दूसरा । अछेरा = अछेह, अपार आश्चर्य । गल्ल = बात, कीर्तिमय कथा ।

(३९) तो = तेरे । गीतड़ा = यश के गीत । जपणो = जपा जाता है । मो = मेरे । भारहनंद = भारमल के पुत्र, जेहल्ल

जेहल तो दिस बिदिस जस, भलहल छायो भाल ।
पूनमपतरो पसरियो, जाणै किरणां जाल ॥ ४० ॥
जेहल ताल खडोण हुं, तरवर लाकड़ होय ।
हरम ढहे ढूंढा हुवै, जस अविकारी जोय ॥ ४१ ॥
तैं जेहा दीधा तुरी, मृग जीपण मलफंत ।
चढ़े जिकां अन पह चढ़ै, तोरण वारण तंत ॥ ४२ ॥
माधव दस दस इक मिळ, अे बारह आदीत ।
एक एक तो जिम अवर, जेहा कुंण जग जीत ॥ ४३ ॥

(४०) भलहल = भलभलाट करता हुआ, प्रकाशमान होकर । भाल = देखकर । पूनमपतरो = चंद्रमा का । जाणै = मानो ( उत्प्रेक्षावाची शब्द है ) । पसरियो = फैला हुआ है । किरणां जाल = किरणों का समूह ।

(४१) ताल = तलाब । खड़ोण = वह जमीन जो हल से जोती बोई जाती है । तरवर = वृक्ष । लाकड़ = लकड़ा, सूखा ठूँठ । हरम = धनाढ्यों के महल । ढहे = गिरकर । ढूंढा = खंडहर मकान । अविकारी = नहीं बिगड़नेवाला ।

(४२) तुरी = घोड़े । जीपण = जीतने को । भलफंत = कूदते हैं । जिकां = जो । अन = अन्य । पह = राजा । तोरण = विवाह के समय । रण = युद्ध के समय । ( हे जेहल ! तैंने कूदन में मृगों को जीतनेवाले ऐसे ऐसे घोड़े दान में दिए हैं जो दूसरे राजाओं को विवाह के समय पर अथवा युद्ध के समय पर चढ़ने को मिलते हैं । )

(४३) ईश्वर के १० अवतार विशेष पूज्य हैं, रुद्र भी ११ हैं और सूर्य भी १२ हैं, तेरे जैसा एक जगत को जीतनेवाला कोई नहीं है । इसमें दातव्यता की विशेषता दिखाई है ।

कुँवर तुहालो श्रीकमल, नित भलहलनै नूर ।
देखतड़ाँ दुख दूर है, पाय रजक सुख पूर ॥ ४४ ॥
जस देसंतर जावही, रूपंतर बलहंत ।
कालंतर न कलीजणा, जेहा तू जाणंत ॥ ४५ ॥
हुवो महाकवि मंगणाँ, दातारों सिर भाग ।
दाना मंगण भाव है, जेहा जस कुल लाग ॥ ४६ ॥
सिव सुसरो वाहण सदन, तिलक हार सिर तोय ।
जेहल रो याँ जेहडा, कहै सुजस सह कोय ॥ ४७ ॥

( ४४ ) तुहालो = तेरा । श्रीकमल = मुख । भलहलनै = प्रकाशमान, तेजस्वी । नूर = रूप । देखतड़ाँ = देखते ही । रजक = रोजगार ।

( ४५ ) देसंतर = अन्य देशों में । रूपंतर बलहंत = रूप और बल का नाश हो जाता है । कालंतर = कालांतर में भी । कलीजणो = लुप्त होता है ।

( ४६ ) मंगणाँ = याचक । जस कुल लाग = यश करान के लिये ।

भावार्थ—हे जहंल ! तू है तो दानियों का मुकुट परन्तु अपने यश को महाकवियों द्वारा कराने के लिये उनका याचक हो गया है ।

( ४७ ) सिव सुसरो = हिमालय । वाहण = शिव-वाहन, नांदिया । सदन = शिव का घर, कैलाश । तिलक = शिव-तिलक, चंद्रमा । हार = शिवहार, मुंडमाला वा श्वेत सर्प । सिर तोय = गंगा । जेहलरो = जेहल का । यां = इन, उक्त वस्तुओं । जेहडा = जैसा । सह कोय = सब कोई ।

असपतियाँ सिर ऊपरै, हूंकै नव सुभ होय।
साँ दूसाँ केरा तुरी, जेहल समपै जांय ॥ ४८ ॥

सोरठा

भारा तो धन भाग, जाड़ेचा दाखै जगत।
तीखो खाग तियाग, जेहल बेटो जनमियो ॥ ४९ ॥
भाराणी जस भार, भुज मंडण थारा भुजाँ।
ऊगे दीह उदार, पाता घर पूगै पवँग ॥ ५० ॥
सांमा तो सुभ राज, ऊगै दन ऊनड़हरा।
जेहा धरम जिहाज, कीरत काज दधीच क्रन ॥ ५१ ॥

( ४८ ) असपतियां सिर ऊपरै = बादशाहतों में बड़ी बादशाहत अथवा उत्तम जाति के घोड़े वा उन घोड़ों के सरदार। हेकै नव सुभ होय = एक के ऊपर नव शून्य, अरब (देश)। सां = उन। केरा = के। तुरी = घोड़े। समपै = देता है।

( ४९ ) भारा = भारमल। धन = धन्य। भाग = भाग्य। जाड़ेचा = यादव क्षत्रियों की एक शाखा। तीखो = तेज। खाग = खड्ग। तियाग = त्याग, दान।

( ५० ) भाराणी = हे [illegible]। भुज = कच्छभुज ( देश )। ऊगे दीह = दिन उदय होते ही, नित्य। पातां घर = चारणों के मकान। पूगै = पहुँचते हैं। पवँग = घोड़े।

( ५१ ) ऊगै दन = दिन उदय होते ही, नित्य, हमेशा। ऊनड़हरा = ऊनड के वंशज। जिहाज = जहाज।

भावार्थ—हे समोके वंशवाले, हे ऊनड़ के वंशज जेहल! तेरा राज हमेशा रहे। तू धर्म का जहाज है और कीर्ति के लिये दधीचि और कर्ण जैसा है।

जलनिध सहल जुआँण, साँमा तू बेड़ा सजै ।
भैचकि पड़ै भगाँण, मिसर अरब ईराक मझ ॥ ५२ ॥
ऊनड़रा आचार, भागणी भूला नहीं ।
जेहा जग दातार, जीवै धर अंबर जितै ॥ ५३ ॥
कुरब अनेक कियाह, सोना अस जवहर समपि ।
जीवाँ जेहलियाह, सुनजर भारहमाल सुत ॥ ५४ ॥
फरहरता कपि फाल, अस दे तें असवारियाँ ।
भारांणी भुरजाल, भुजरा भलो भवाड़ियो ॥ ५५ ॥
भागांणी भटकेह, आवे काबे पाला अठै ।
ऊतरिया अटकेह, अस पावै अंगाकर ॥ ५६ ॥

( ५२ ) जलनिधि = समुद्र [illegible] सहल = हवाखोरी के लिये जुआण = जवान । बेड़ा = नावें, नौकाएँ । सजै = तैयार करता है । भैचकि = चकित । भगांण = भगदड़ । मझ = मध्य

( ५३ ) भागणी = जेसल । दातार = दानी । धर = पृथ्वी जितै = जब तक ।

( ५४ ) कुरब = प्रतिष्ठा के कार्य । अस = अश्व, घोड़े । जवहर = जवाहिरात । समपि = देकर । जीवां = हम जीते हैं ।

( ५५ ) फाल = छलांग । फरहरता कपि फाल = बंदर की तरह छलांग मारते हुए । दे = दिए । तैं = तूने । असवारियां = सवारी । भुरजाल = जबरदस्त किला । भलो = अच्छा । भवाड़ियो = कर दिया ।

( ५६ ) भटकेह = भटकते हुए । पाला = पैदल । अठै = यहां । ऊतरिया अटकेह = विश्राम के लिये ठहरते हैं । अस = घोड़े ।

तोनूँ तूकारेह, सुकवी विरदावे सदा ।
दत ,तू हैवर देह, जेहल जीकारा दिए ॥ ५७ ॥
थां घर जेहलियाह, है नहँ चीतरिया हुता ।
दत है जिकां दियाह, माँडीजै जे चीत मक्क ॥ ५८ ॥
हैवरचंद हुवाह, जेहल नैं दीधा जिकै ।
देखे भूप हुवाह, भागानद चकाग भत ॥ ५९ ॥
जेहा जीण जड़ाव, गजगावाँ मिस्र कुँअर गुर ।
रचि अपंत्र अथ राव दीधा तैं लाखां दुआ ॥ ६० ॥
जेहा केहा [illegible], हैवर राखोड़ा हुवै ।
ताजी दीजै त्याग, जस लीजै सोइ जगन ॥ ६१ ॥

( ५७ ) तोनूँ = तुझको । तूकारेह = तकारा देकर, रकारा देकर । विरदावे = यश-गान करते हैं । दत = दान से । हैवर = श्रेष्ठ घोड़ा । देह = देकर । जीकारा = नाम के आगे 'जी' लगाकर बोलना ।

( ५८ ) [illegible] = जिनके । चीतरिया हुता = चित्राम से चित्रित किए हुए ( घोड़े ) । जिका = उनको । माँडीजै = [illegible] । चीतमक्क = चित्र में जिनको लिखना चाहिए [illegible] लिखने वाले कुँवर । है = हय, घोड़े ।

( ५९ ) [illegible] = [illegible] । जिकै = जो । हुवाह = [illegible] । भत = भाँति, तरह ।

( ६० ) जीण = जीन । जड़ाव = जड़ाऊ । दुआ = दूसरा ।

भावार्थ—जेहल ! [illegible] दूसरा लाखा फूलाणी और राजकुमार से बड़ा है । [illegible] दान से दिए । उनके जड़ाऊ जीन और गजगावों के सिर में पंख लगा दिए हैं । गजगा = गच्छे, जीनों के चँवर बँधे हुए ।

( ६१ ) केहा = [illegible] । त्याग = [illegible] । राखोड़ा = [illegible] । ताजी = घोड़ा । जगन = यश

जवहर जेहलियाह, तैं न किया घोड़ाँ नगा।
दल सुध दाँन दियाह, काठी घाटी कवियणाँ ॥ ६२ ॥
ऊनड़ हंम उदार, चंद्रण लाखा चक्रवती।
जेहा हुंत जुहार, हुता इता हूँता हुओ ॥ ६३ ॥
राज भगीरथ राम, जुजठल जग जण जण जपै।
कीधा मोटा काम, नाम रहै जेहल नरा ॥ ६४ ॥

भावार्थ—हे जेहल! [illegible] कैसा [illegible] जिनमें (सुन्दर) घोड़े भस्म होते हैं। सच्चा यज्ञ तो वही है जिसमें [illegible] दान देकर यश प्राप्त किया जाता है।

( ६२ ) जवहर = जौहर [illegible] जिसमें विपत्ति के समय राजपूत स्त्रियाँ अपने को अग्नि की भेंट दे देती थीं। यहाँ पर 'जवहर' का शब्दार्थ जलाने या अश्वमेध यज्ञ के हैं। दल—दिल, चित्त। सुध—शुद्ध। काठी = काठियावाड़ी। घाटी = घाट के। (इन दोनों स्थानों के घोड़े [illegible] होते हैं।) अथवा घाटी—[illegible] [illegible] [illegible] करते हैं और जेहल उनका काठियावाड़ [illegible] देता है। घाटी—[illegible] करनेवाला, तेजस्वी।

( ६३ ) ऊनड़—ऊनड़ [illegible], जेहल का पूर्व पुरुष। [illegible] [illegible] [illegible] दानी [illegible] हुआ था। चंद्रण—चंद्रण [illegible] [illegible] [illegible] दानी हुआ था। लाखो = लाखा फूलाणी [illegible] दानवीर। हुंत [illegible]। जुहार—मिलना, नमस्कार आदि [illegible] [illegible]। हुता इता हूँता हुओ = [illegible] (उपरोक्त दानी राजा) [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] मिल [illegible]। अर्थात् जेहल राजा [illegible] बड़ा दानी था कि [illegible] दानियों से कम नहीं था।

( ६४ ) जुजठल—युधिष्ठिर। जण जण = प्रत्येक मनुष्य।

सांमा तू सुदतार, घर मांगण आयाँ घणाँ ।
बित ब्गसण बडवार, हरख घणो तो उर हुवै ॥ ६५ ॥
बित विलसणरी बार, नर सठ बित बिलसै नहीं ।
जावै वीत जियार, जेहल पछतावै जिकै ॥ ६६ ॥
नामाँ कामाँ नेक, कीधा तैं जेहा कुंवर ।
हेक रसण सूँ हेक, कवियण सकै बखाण कुण ॥ ६७ ॥
दिनकर बाहण देह पाहण फूटै पोड़ सूँ ।
जेहल साहण जेह, साहण समुँद समापिया ॥ ६८ ॥
मिलै नहीं मकराँण, ताज कंच माँझल तुरी ।
जेहलिये घण जांण, मांजाँ दियण मँगविया ॥ ६९ ॥

भावार्थ—हे जेहल ! बड़े कार्य करने से मनुष्यों का नाम रह जाता है । जैसे राजा भगीरथ, भगवान रामचंद्र और युधिष्ठिर का यश प्रत्येक मनुष्य जपता है ।

( ६५ ) घणा = बहुत । बगसावण = देने में । बड़वार = बड़ा । घणो = अधिक । हरख = हर्ष, खुशी ।

( ६६ ) विलसणरी = भोगने की । बार = समय । बिलसै = भोगते हैं । जियार = जीवन । वीत = समाप्त ।

( ६७ ) हेक = एक । रसण = जिह्वा । कुण = कौन ।

( ६८ ) दिनकर-बाहण = सप्ताश्व । पाहण = पत्थर । पोड़ सूं = पांव से । साहण = घोड़े ।

(६९) मकराण = मकरान, काबुली घोड़े । ताज = अरबी घोड़ा, ताजी । अथवा इन देशों में जो घोड़ों के लिये प्रसिद्ध हैं जो घोड़े नहीं मिलें वैसे बढ़िया सुंदर घोड़े मँगाए । घण जांण = बहुत समझवाला ।

हव जेहल रिपहाड़, सोनग पल जगदेव सिर ।
गुर जसभांडा गाड ऊबरिया थल ऊपरै ।। ७० ।।
काला जल रा कीप, वाहण आणै पार विण ।
जस साटै जग जीप, जेहल लूटावै जिकै ।। ७१ ।।
मृग मरकट मन मीन, नाव नागरीनथण नट ।
देख हुवै औ दीन, अस जेहल बगसै इसा ।। २ ।।
जेहा सीहा जाड़, ऊवेडै ऊनड़हरो ।
चारण माथै चाड़, रूपग सुण सुण राखिया ।। ७३ ।।

---

( ७० ) हव = अब । रिपहाड़ = दधीचि ऋषि का अस्थिदान इंद्र को । सोनग पल = सोनग राठोड़ ने शगार का मांस काटकर दिया । जगदेव सिर = जगदेव पंवार ने अपना सिर कंकाली भाटण को मांगने पर दान में दिया था । गुर जस = भारी यश का झंडा ( स्तंभ ), गाड़कर स्थापन करके । ऊबरिया = रक्षित रहे, अमर हो गए ।

( ७१ ) काला जल रा कीप = काले समुद्र ( ब्लेक सी ) के आस पास के देशों ( इराक, बाकू आदि ) में घोड़े अच्छी नसल के पैदा होते हैं । कीप = द्वीप का पाठांतर प्रतीत होता है । वाहण = वाहन, घोड़े । आणै = मँगाए । पार विण = अपार । साटै = बदले में । जीप = जीतनेवाला । जिकै = वे, उनको ।

( ७२ ) औ = यह । अस = अश्व । बगसै = दान में देता है । इसा = ऐसे । मृग आदि के एक एक गुण उन अच्छे घोड़ों में हैं जो दान में जेहल राजा देता है ।

( ७३ ) सीहा = सिंहों की । जाड़ = डाढ़ें । ऊवेडै = उखाड़ सकता है । चाड़ = चढ़ा रखे हैं । रूपग = यशकविता ।

कुण जावै कांबोज, मिसर अरब अैराक मझ ।
भुज जेहा क्रन भोज, अस रीझाँ बगसै उसा ॥ ७४ ॥

इति जेहुल जम जडाव ।

---

( ७४ ) कुण = कौन । कांबोज, मिसर, अरब और ऐराक के घोड़े प्रसिद्ध होते हैं । भुज = कच्छभुज में । रीझा = प्रसन्न होकर । उसा = वैसे ।

इति जेहुल जम टीका समाप्त ।

## ( २ ) अथ कायरबावनी

सिव सिवसुत हिमगिरसुता, बिसनु दिवाकर बंद ।
अब कायर अपहास री, रचना रचूँ अमंद ॥ १ ॥
आग न जागै आँखियाँ, तिण सिर दीधाँ तंत ।
पल पल मुख पुलकावणो, कायर हीं उचकंत ॥ २ ॥
दिन नूँ रजनी दाखियाँ, दाखै तारावंत ।
न दे ओहड़ो वाँ नराँ, कनैं म राखो कंत ॥ ३ ॥
कंथ म राखो कायराँ, करैं नजर जो कोड़ ।
दोयण दल बीटोदियाँ, छल कर जावै छोड़ ॥ ४ ॥
कंथ सुहावै ज्यूँ करो, कायर नावै काज ।
रहैं न कायर राज में, रहैं जिकाँ घर राज ॥ ५ ॥

( १ ) सिवसुत = गणेश । हिमगिरसुता = पार्वती । दिवाकर = सूर्य्य । बंद = नमस्कार करके । अपहास री = उपहास की ।

( २ ) आग = अग्नि, तेज । जागै = प्रज्वलित होता है । तिण = उसके । तंत = निश्चय । हीं = हृदय । उचकंत = उछलने लग जाता है, धड़कने लग जाता है ।

( ३ ) नूं = को । रजनी = रात । दाखियाँ = कहने पर । ओहड़ो = उलटा जवाब । म = मत । कनैं = पास, नजदीक ।

( ४ ) दोयण = शत्रु । दल = फौज, सेना । बीटोदियाँ = घेरा डालने पर ।

( ५ ) कंथ = कंत, पति । सुहावै = अच्छा लगै । नावै = नहीं आता है । जिकाँ = जिनके ।

गाडा भरिया गोलणाँ, सूना सदन सुरंग।
कंथ घणाँ ही कायराँ, जाणीजै इम जंग॥ ६ ॥
कंथ म राखो कटक में, नर कायर निरलज्ज।
काला बलदाँ काढ़जै, कौकल जीपण कज्ज॥ ७ ॥
काल न आवै कायराँ, बालम बिसवा बीस।
पकड़ै रण घर पंथ नूं, पकडै नँह पाँडीस॥ ८ ॥
कायर अधरम कुजस सूँ, नीच न डरपै नाह।
डरपै परदल देखियाँ, रण तज लागै राह॥ ९ ॥
लाखा सठ दे लीजिए, पंडित गुण भरपूर।
कायर लाखाँ बेचकर, साहिब लीजै सूर॥ १० ॥

( ६ ) गोलणाँ = गुलामों से। सूना = शून्य। सुरंग = सजा हुआ। घणाँ = बहुत। इम = इस प्रकार। जंग = युद्ध।

( ७ ) कटक = युद्ध, फौज। बलदाँ = बैलों पर। काढ़जै = निकाल देना चाहिए। कौकल = युद्ध। जीपण = जीतने को। ( प्राचीन काल में देश-निर्वासन दंड के समय दंडित पुरुष का काला मुँह, काले कपड़े करके काली सवारी ( बैल या गधा ) पर बैठाकर देश बाहर कर देते थे।

( ८ ) बालम = स्वामी, पति। बिसवा बीस = निश्चय ही। पकड़ै रण घर पंथ नूं = युद्ध से घर का रास्ता पकड़ता है अर्थात् युद्ध से घर भाग जाता है। पाँडीस = तलवार।

( ९ ) नाह = पति, स्वामी। डरपै = भय करता है। परदल = दूसरों की सेना को। लागै राह = भाग जाता है।

( १० ) सठ = शठ, मूर्ख। साहिब = हे स्वामी। सूर = शूरवीर।

भेष लियाँ सूँ भगत नँह, हुवै नँह गहणाँ हूर ।
पोथी सूँ पंडित नहीं, समतर सूँ नँह सूर ॥ ११ ॥
आवै अँनदातार नूं, आहव छलाँ भलाय ।
पितरेसुर जिण रा पड़ै, नरक बिचालै न्याय ॥ १२ ॥
ज्यूं कुकवि की जीभ में, अजसुता नँह वास ।
त्यूं कायर री तेग में, नँह कालिका निवास ॥ १३ ॥
अदताँ केरो अरथ ज्यूं, कायर री किरमाल ।
कोइ प्रकारा कोससूँ, नँह पावै नीकाल ॥ १४ ॥
मंजन करै सभोर मन, सूरा सारी धार ।
कायरड़ा मंजन करै, आँसू धार मझार ॥ १५ ॥

( ११ ) गहणां = भूषणों से, जेवरों से । हूर = सुन्दर । भगत = भक्त । पोथी = पुस्तक । समतर सूं = शस्त्र से ।

( १२ ) अनदातार = रोटी देनेवाला । आहव = युद्ध में । छलां भलाय = शत्रुओं को देकर, शत्रुओं के सिपुर्द करके । पितरेसुर = पितृवर । बिचालै = अंदर । न्याय = ठीक ही है ।

भावार्थ—जो अपने अन्नदाता को युद्ध में शत्रुओं के सिपुर्द कर आता है उसके पितृगण नरक में पड़ते हैं ।

( १३ ) अजसुता = सरस्वती । तेग में = तलवार में ।

( १४ ) अदतां = कृपणों । केरी = की । अरथ = धन । किरमाल = तलवार । कोस सूं = कोष से, खज़ाने से, तलवार की म्यान से ।

( १५ ) मंजन करै = स्नान करता है । सभोर = उत्साहित । सारा धार = तलवारों की धार में ।

आँसूँ नाखै आँख सूँ कर हूँता किरमाल़।
भागल नँह नाखै भिड़ज, असहाँ सिर आताल़ ॥ १६ ॥
बरणी कायरता बड़ी, खोड़ाँ माँझल खोड़।
देखै खल़ मुख मैं दिवै, तेग थकाँ त्रण तोड़ ॥ १७ ॥
कहणो गोलाँ हूँत की, डोलाँ हूँत डरंत।
खल़ दल़ केरी खेह सूँ कायर खेह करंत ॥ १८ ॥
काँकल़ समै कुबेलियाँ, म दे संग महमाय।
निजरां आगै निमष मैं, हार मोर ह्वै जाय ॥ १९ ॥

( १६ ) नाखै = गेरते हैं, पटकते हैं। भागल = युद्ध से भागने-वाला, कायर। भिड़ज = घोड़ा। असहाँ सिर = शत्रुओं के ऊपर। आताल = तेजी से।

( १७ ) खोड़ां = ऐबों। खल = शत्रु। दिवै = देते हैं। थकां = मौजूद होने पर।

भावार्थ—कायरता सब ऐबों का ऐब कहा गया है। फिर भी कायर हाथ में तलवार होने पर भी शत्रु को देखकर मुख में तृण दे लेता है अर्थात् अपनी दीनता प्रकट करता है।

( १८ ) गोलां हूँत = तोपों के गोलों से। की = क्या। डोलां हूँत = आँखों से। खेह सूं = रज से। खेह करंत = खाक धूल करते हैं अर्थात् कुछ नहीं करते हैं।

( १९ ) समै = समय पर। कुबेलियां = खोटे साथियों का। म = मत। महमाय = हे देवी। हार मोर ह्वै जाय = ( 'चित्र का मयूर हार को निगल गया था', यह एक किंवदंती है ) चित्रित मयूर के आगे हार हुआ जैसे अर्थात् गायब हो जाता है।

जाणै बल्लभ जीवणो, कायर नाँणै कोह ।
लोपै साँकल लोह री, लख रण नागो लेह ॥ २० ॥
आवै लोही ईखियाँ, तन ज्याँ, भड़ाँ तिँवाल ।
अचरज किसो अचेत है, देख लोह विकराल ॥ २१ ॥
ज्यूँ कामण पोसाक कर, पाछानूँ पेखंत ।
भागल पाछे भालही, भाजंतो इण भंत ॥ २२ ॥
दव विण सारा दाहिया, अथवा खारच अंग ।
नर कायर बाँछै नहीं, जिण घर माथै जंग ॥ २३ ॥
करसण सेही स्याल बिल, गिर त्रिय बाँभण गाय ।
समरांगण मँह साधणा, चाहे चित्त चलाय ॥ २४ ॥

( २० ) बल्लभ = प्रिय, प्यारा । जीवणो = जीवन को । नाणै = नहीं लाता है, नहीं करता है । कोह = क्रोध । नागो लेह = नंगा शस्त्र ।

( २१ ) लोही = खून । ईखियाँ = देखने से । भड़ां = योद्धाओं को । तिंवाल = चक्कर । किसो = कैसा ।

( २२ ) कामण = स्त्री । पोसाकर = कपड़े पहिनकर । पाछानूँ = पीछे की ओर । भालही = देखती है । भाजंतो = भागता हुआ । भंत = भाँति, तरह ।

( २३ ) दव = अग्नि । विण = विना । दहिया = जला, या जलाया । खारच = खारिज, बेकार । बांछै = चाहै । माथै = ऊपर, में । अर्थात कायर ऐसा डरपोक होता है कि घरों की मामूली लड़ाई में जाना नहीं चाहता । उसकी तरफ से चाहे सारा घर या वन जल जाय या तबाह हो जाय चाहै शरीर का कोई अंग ही कट जाय और खारिज हो जाय ।

( २४ ) करसण = किसान । सेही = एक पशु जिसके शरीर पर लंबे लंबे काँटे से होते हैं । स्याल = शृगाल । बांभण = ब्राह्मण ।

लाजाळू बागाँ मही, कायर कटकाँ माँहि ।
परसे नरकार रो पवन, सकुचै संसा नाँहि ।। २५ ।।
त्रण दाँताँ लेगा तुरत, आडा देगाँ पाण ।
भारथ जे पड़ भागणाँ, औ कुभटाँ अवसांण ।। २६ ।।
भागल भारथ भीड़ में, बाणा सह विसरंत ।
मुख बापूड़ा मावडी, भाईड़ा भापंत ।। २७ ।।
काँकण समै कुचेलियाँ, सरकण तणो सुभाव ।
निगुणाँ थिर रोपै नहीं, पाव घड़ी रो पाव ।। २८ ।।
नर कायर आँगो नहीं, लूँ ण लिहाज लगार ।
धोलै दिन छोडै धणी, अणी मिलै उण वार ।। २९ ।।

कायर मनुष्य युद्ध में किसान, स्त्री, ब्राह्मण, गाय बन जाता है अथवा सेही ( शृगाल ) के समान बिल में वा पहाड़ की गुफा में छुप जाता है।

( २५ ) लाजालू = लजवंती, छुईमुई । परसे = स्पर्श करने से । सकुचै = संकुचित होते हैं । संसा = संशय ।

( २६ ) त्रण = तृण । दांतां = दांतों में । पांण = हाथ । औ = यह । कुभटां = कायरों के । अवसांण = मौके ।

( २७ ) भीड़ में = झुंड में । विसरंत = भूल जाता है । बापूड़ो = बेचारा, दीन । मावड़ी = माता । भाईड़ा = भाई ।

( २८ ) सरकण = खिसकना, भगना । पाव = पैर ।

( २९ ) लूंण = नमक । लगार = जरा भी । धोळे दिन = दिन ही में, प्रगट में । धणी = स्वामी । अणी = सेना । उण वार = उस समय ।

काँकल् छोड़ कूदियो, भागल पौरस-भंग ।
कीधा जाणै काढ़मा, कुड़ नीसरै कुरंग ॥ ३० ॥
कायर थाको दौड़तर, ससि सूँ करै पुकार ।
म्रग ज्यूँ मुझ बसावजै, मंडल तणैं मंझार ॥ ३१ ॥
गत सिंधुर कटि केहरी, रमणी हाटक रंग ।
कुच गिरवर लोयण कमल, औ है कुसल अंग ॥ ३२ ॥
सुख सूँ बैठी सदन में, क्यूँ पूछो कुसलात ।
तो तन कुसलायत तणी, वालम पूछूँ बात ॥ ३३ ॥

( ३० ) काकल = युद्ध । भागल = भगोड़ । पौरसभंग = पुरुषार्थहीन । काढ़मां = भागना, दौड़ा । कुड़ = एक प्रकार का लोहे का यंत्र जिसके द्वारा हरिण आदि पशु पकड़े जाते हैं । पुरुषार्थ हीन ( कायर ) मनुष्य युद्धभूमि से इस तरह भागता है मानो फाँद से किया हुआ हरिन निकलकर भागता है ।

( ३१ ) थाको = थका हुआ । ससि सूँ = चन्द्रमा से । मुझ = मुझको ।

( ३२ ) गत = गति । सिंधुर = हाथी । केहरी = सिंह । हाटक = स्वर्ण । लोयण = नेत्र । औ = यह ।

भावार्थ—किसी स्त्री का स्वामी युद्ध से भागकर घर आया है और अपनी स्त्री से पूछ रहा है—हे स्त्री ! तुम्हारी गज सी चाल, सिंह जैसी कमर, कंचन सा रंग, गिरि समान कुच, कमल से नेत्र और अंग तो कुशल से हैं ?

( ३३ ) क्यूं = क्यों । कुसलायत = कुशलता । वालम = स्वामी, पति ।

भावार्थ—वह स्त्री उत्तर देती है—मैं तो मकान में अच्छी तरह रहती थी, मेरी कुशल क्यों पूछते हैं ? हे स्वामी, आपके शरीर की कुशलता मैं पूछती हूँ । ( क्योंकि आप युद्धभूमि से आए हैं । )

मूँछ नाक सिर रो मुकुट, ससतर सांम सनाह ।
साबत लायो समर सूँ, कै नँह लायो नाह ॥ ३४ ॥
मूँछ केस खंडत नहीं, नाक न खंडत कोर ।
पड़ी पुलंताँ पाघडी, सुकुलोणी तज सोर ॥ ३५ ॥
आपड़ियो मो जेथ अरि, तजिया ससतर तेथ ।
लागा धंधै लेण रै, आयो कुसले एथ ॥ ३६ ॥
धण सुण थारा धरम सूँ, साबत लायो सीस ।
मोल अबार मँगावसूँ, पाघाँ बीस पचीस ॥ ३७ ॥
पाघ बजाजाँ पूछ पी, लेसो मोल मँगाड़ ।
ईजत किण विध आँणसो, पूछूँ हेलापाड़ ॥ ३८ ॥
समर ढिलोकर साँम नूँ, लस आवै लबड़ाक ।
मूँछ थकाँ मूँडत जिकं, नाक थकाँ बिण नाक ॥ ३९ ॥

( ३४ ) सिर रो मुकुट = पगड़ो । ससतर = शस्त्र । सांम = स्वामी । सनाह = कवच । साबत = साबित, अखंड ।

( ३५ ) पुलंतां = भगते समय । पाघड़ो = पगड़ो । सुकुलीणी = अच्छे कुलवाली । सोर = शोर ।

( ३६ ) आपड़ियो = पकड़ा । मो = में, मुझको । जेथ = जहाँ । तेथ = वहां । धंधै = काम । एथ = यहाँ ।

( ३७ ) धण = हे स्त्री । थारा = तेरे । मोल = मूल्य से । अबार = अभी । मँगावसूँ = मँगाऊँगा । पाघां = पगड़ियां ।

( ३८ ) बजाजां = कपड़े बेचनेवालों को । पी = हे पति । लेसो = लेओगे । मँगाड़ = मँगाना । किण विध = किस तरह । आँणसो = लाओगे । हेलापाड = जोर से कहकर, पुकार पुकारकर ।

( ३९ ) समर = युद्ध में । ढिलोकर = ढोला देकर, एकाकी

हूँ कुल में पापी हुवो, पत नूँ दीन्हो पीठ।
तिया पतिव्रत पाल तू, धिक धिक मत कह धीठ ॥ ४० ॥
कै खाधा मीठा कवा, प्रीतम जिणरै पास।
नो खाताँ खाराकवा, होजे काँय उदास ॥ ४१ ॥
काँकल में खारा कवा, मिलिया नहीं मजाल।
तीर बाँण दीठाँ तठै, लागा गोला लाल ॥ ४२ ॥
खाँवँद कवा खवाड़िया, मीठा लेले मोल।
सहँस गुणाँ मैं सीलिया, बोले मीठा बोल ॥ ४३ ॥
बादल ज्यूँ सुरधनुष बिण, तिलक बिना दुजपूत।
बनो न सोभै मोड़ बिन, घाव बिनाँ रजपूत ॥ ४४ ॥

छोड़कर। सांम नूं = स्वामी को। टस आवै = भागकर चला आवै। लबड़ाक = लबाली, बकवादी।

( ४० ) हूं = मैं। पत नूं = स्वामी को। धीठ = धृष्ट, जबरदस्त।

( ४१ ) कै = कितने ही। खाधा = खाये। कवा = गास, ग्रास, लुकमे। कांय = क्यों।

( ४२ ) कांकल = युद्ध। मजाल = जरा भी। दीठां = दिखाई दिए। तठै = वहाँ।

( ४३ ) खाँवँद = स्वामी ने। खवाडिया = खिलाए। सीलिया = बदले में दिए।

( ४४ ) बादल = मेघ। सुरधनुष = इंद्रधनुष (जो वर्षा के पहिले या पीछे दिखाई देता है)। दुजपूत = ब्राह्मण का पुत्र। बनो = दूलहा, बींद। मोड़ = सेहरा, मोर। ( जो विवाह के अवसर पर मुँह के आगे बांधा जाता है। )

पिसण पीठ खग जो जड़ूँ, पिसण जड़ै मो पीठ ।
किसूँ नफो कह कामणी, राड़ बजायाँ रीठ ॥ ४५ ॥
न लिवूँ हूँ बदलो नियम, असमर बाहाँ आन ।
साचा मन सूँ सिखियो, गोरी ब्रह्म-गिनॉन ॥ ४६ ॥
पैलो खोसै पाघड़ो, हँसे दिखालूँ दन ।
कायर मोनैं क्यों कहै, सुद्ध सुभावां संत ॥ ४७ ॥
तैं लारै तरवार रै, पायो रजक पलीत ।
दीधो खाँवँद नूं दगो, संत नहीं इण रीत ॥ ४८ ॥
काटल आवध सूझ कर, मन मंदाइण न्नत्र ।
आवध राखै ऊजला, मैला ज्याँरा मत्र ॥ ४९ ॥

( ४५ ) पिसण = शत्रु । खग = खड्ग । जड़ूं = चलाना, वार करना । पो = मेरी । किसूँ = कैसा । नफो = लाभ । राड़ = लड़ाई । रीठ = युद्ध । राड़ = बजाया रीठ = जबरदस्त युद्ध करने में ।

( ४६ ) लिवूँ = लूँगा । असमर = तलवार । गोरी = हे स्त्री ! गिनान = ज्ञान ।

( ४७ ) पैलो = दूसरा । खोसे = छीन । हँसे = हँसकर । दिखालूँ = दिखाऊँ । मोनं = मुझको ।

( ४८ ) तैं = तूने । लारे = पीछे । रजक = जीविका । पलीत = चीथड़ों का पुतला, ते नापाक । दगो = धोखा ।

( ४९ ) काटल = काट लगे हुए, जंग चढ़े हुए । आवध = हथियार । मदाइण = मंदाकिनी गंगा । न्नत्र = वर्ण । ऊजला = साफ, उज्ज्वल । मैला ज्यांरा मत्र = जिनके मन कलुषित हैं अर्थात् जो पापी हत्यारे हैं ।

अधिक सूर कै हूँ अधिक, बनिता समझ विवेक ।
जग सारा में तूँ हँसै, उमा सूँ नारद एक ॥ ५० ॥
दल ओला पैला दुहूँ, लथ्थो बथ्थ हुवाह ।
जेथ मुवाज जीविया, जे जीविया मुवाह ॥ ५१ ॥
पिसणाँ रा मरसूँ पुलै, अप मैं लियो बचाय ।
सो इन तैं कुवचन सरा, घायो अगणित घाय ॥ ५२ ॥
भारथ भल कर भामणी, गो भारथ नँह मेल ।
वापी कूप बनाव विस, कै कर म्हासूँ केल ॥ ५३ ॥
एकांतरै अठार सै, साँवण दुतियक स्वेत ।
बाँकै इथ बणाविया, कायर कुजस निकेत ॥ ५४ ॥

इति कायर बावनी ।

---

भावार्थ—कायर कहता है कि मेरा चित्त शांत है इस कारण मेरे हथियारों पर जंग चढ़ी हुई है । जो पापी हत्यारे हैं वे अपने हथियारों को उज्ज्वल रखते हैं ।

(५०) सूर = शूरवीर । बनिता = हे स्त्री ।

(५१) दल = सेना । ओला = इधर के । पैला = उधर के । लथ्थोबथ्थ = लथपथ । जेथ = जहाँ । मुवा = मरे ।

(५२) पुल = भागकर । घायो = घायल किया । घाय = घावों से ।

(५३) भारथ = लड़ाई । भामणी = हे स्त्री । वापी = बावड़ी । कूप = कुआ । विस = विष, जहर । कै = अथवा । केल = क्रीड़ा ।

(५४) एकांतरै अठारसै = १८७१ संवत । दुतियक = द्वितीया । स्वेत = शुक्ल ।

इति कायर-बावनी की टीका समाप्त ।

## ( ३ ) अथ झमाल राधिका सिख-नख-वर्णन

मधुकर भ्रमत सुबास मद, भाल सुधाकर भास ।
मोदक कर मन मोदमय, नितजय ज्ञान निवास ॥
नितजय ज्ञान निवास, पती गणनायकाँ ।
लंबोदर हरनंद सिरोमण लायकाँ ॥
भामणि श्री ब्रजराज घणाँ हित सूँ भजै ।
सिख नख वरणूँ जास क बुद्धि समापजै ॥ १ ॥
ससि-बदनी तो सिर सरल, मेचक केस मजाँण ।
हिए काँम पावक हुवै, जास धुँवाँ मन जाँण ॥
जाम धुँवाँ मन जाण नमाँ मग नीसरे ।
मच्छर अच्छर गात, उडाया मन हरे ॥

( १ ) मधुकर = भ्रमर । भाल = ललाट । सुधाकर = चंद्रमा । भास = शोभायमान । मोदक = लड्डू । मोदमय = आनंद सहित । हरनंद = शिव-पुत्र । घणां = अधिक । हित सूँ = प्रेम से । भजै = भजन करती है । जासक = जिसका ( यहाँ 'क' पादपूर्त्ति के लिये है, इसी प्रकार आगे भी जानना ) । समाप जै = दीजिए ।

( २ ) ससिबदनी = चंद्र के से मुखवाली । मेचक = काला । तो = तेरे । काँम पावक = कामाग्नि । हुवै = प्रज्वलित है । धुँवाँ = धूम । मन = मानो ( उत्प्रेक्षावाचक ) । नसां = नसों के । नीसरै = निकली है । मच्छर = मद, गर्व । अच्छर = अप्सराएँ ।

सोकड़ल्याँ चख माँहि करै कड़वाइयाँ।
ते आँसू टपकंत हिए दुचताइयाँ॥ २ ॥
सित कुसुमाँ गूँथी सुखद, बेणी सहियाँ ब्रंद।
नागणि जाणैं नींसरी, मांपड़ि खीरसमंद॥
साँपड़ि खीरसमंद दुरंग सँवारिया।
धारा फेण कलिंद, तनूंजा धारिया॥
भाषण उपमाँ और मनोरथ भेलिया।
मझ आटी मखतूल क मोती मेलिया॥ ३ ॥
काँन जड़ाऊ काम रा, कुंडल धारण कीन्ह।
झलहल तारा झूमका, दुहुँ पाखाँ ससि दीन्ह॥
दुहुँ पाखाँ समि दीन्ह अँधार निकंदवा।
तेजोमय रथ तास निधात पही नवा॥
माँग फूल सिर फूल जड़ाऊ मंडिया।
खिण खिण निरखै नाह, हिए दुख खंडिया॥ ४ ॥

---

सोकड़ल्याँ = सौतें, सपत्नियां। कड़वाइयाँ = बुरी लगती हैं। दुचताइयाँ = दुख होता है।

( ३ ) सित = श्वेत। सहियां ब्रंद = सखियों का समूह। मांपड़ि = स्नान करके। दुरंग सँवारिया = दो रंग बनाकर। धारा = गंगा नदी। कलिंद-तनूंजा = यमुना नदी। भाषण = कहने को। भेलिया = मिलाए। मखतूल = काला रेशम। आटी = वेणी।

( ४ ) काम रा = कामदेव के। झलहल = झलझलाते हुए। झूमका = लटकण। दुहुँ पाखां = दोनों पक्षों में, दोनों ओर। अँधार = अंधकार। निकंदवा = नाश करने को। तेजोमय = सूर्य्य।

जड़ियां तिलक जवाँहरां, जाणे दीपक जोत ।
बालम चीत पतंग बिधि, जिन सूँ आसक होत ॥
जिन सूँ आसक होत भली छवि भालरी ।
जुलफ बँधे मन मीन बणी रुख जालरी ॥
बरतुल सुछम कपोल रसीली वामरा ।
किया तयारी वेह दरप्पण कामरा ॥ ५ ॥
काली भमरावलि कली, भूँहाँ बांकड़ियाँह ।
कमल प्रभात विकासिया, इसड़ी आंखड़ियांह ॥
इसड़ी आंखड़ियाँह किया म्रग वारणौ ।
सर मनमथ गा हारि क अंजण सारणौ ॥
रयां न रही काय खतंगा खंजनां ।
नहीं है गुनिराज विसारि निरंजनां ॥ ६ ॥

तास = उसके । निपात = विशेषकर । पही = पहिए । नवा = नवीन । खिण खिण = क्षण क्षण । खोइया = नाश हुआ ।

( ५ ) जवांहरां = जवाहिरात से । जोत = जोति । बालम = पति । चीत = चित्त । आसक = आशिक, मोहित । भली = श्रेष्ठ । भालरी = ललाट की । जुलफ = जुल्फ । रुख = जैसा । बणी रुख जालरी = जाल सी बन गई । बरतुल = गोल । सुछम = सूक्ष्म । कपोल = गाल । वामरा = स्त्री का । तयारी = तैयार । वेह = विधाता, विधि ।

( ६ ) कली = काली । भूंहां = भँवारे । बांकड़ियांह = बांकी । इसड़ी = ऐसी । वारणौ = न्यौछावर । सर = बाण । मनमथ = कामदेव । गा = गया । अंजण = अंजन, कज्जल । सारणौ = लगाने

नाक नवल्ली नारि कै, नकबेसर घणनूर ।
मेाती ग्रहियाँ चोंच भक्ष जाणक कीर जरूर ॥
जाणक कीर जरूर मक्षारस जाँणियेा ।
बदन निहारै नाक सचाह बखाणियेा ॥
पलकाँ मिलवा पाल उपाव अनंदनैं ।
चितवै जांण चकेारक पूरण चंदनैं ॥ ७ ॥
बणियेा तिल आरै बदन, नेह रसिक मननार ।
तिल रूपर तिलांतिसा वार दई सेा वार ॥
वार दई सेा वारक फेर बखाणऊँ ।
जाहर हाटक स्यान जिसेा सुख जाणजैं ॥
सेा जिण चोखी देण मनोभव साखियेा ।
रूप नरेसुर आपक सीदी राखियेा ॥ ८ ॥

स । सूर्यो = नासिका । कोय = कुछ भी । रंगीला = जहरीला नाग । नहीं ह्वे = मोहित होकर । निरखना = ईश्वर को ।

( ७ ) नवल्ली = नवीन । नक = नाक । घणनूर = बहुत सुंदर । चोंच = चंचु, चोंच । कीर = सुवा, तोता । सचाह = इच्छा सहित । पाल = रोकती है । उपाव अनंदनैं = आनंद को पैदा करती है, आनंद हो रहा है । चितवै = देखै ।

( ८ ) बणियेा = बना हुआ है । आरै = ओर । जाहर = प्रसिद्ध । हाटक = कंचन, सोना । जिसेा = जैसा । चोखी देण = पहरा देने को । मनोभव = कामदेव । साखियेा = जमानत में, साखी । नरेसुर = राजा । सीदी = काले रंग का एक जाति का मनुष्य जो विश्वसनीय होता है ।

फबै ललाई बिंबफल, परतख अधर प्रवाल़ ।
जपा कुसम जोड़ै जिसा, भाखै सहियाँ भाल़ ॥
भाखै सहियाँ भाल़ लिगाँ कुसभावनै ।
चित पिय कोमल़ राय बधावै चावनै ॥
सहा अणु बचनीय जिकांरो माधुरी ।
दै पिय, रसणाँ दाखि रतीहो नाँ दुरी ॥ ९ ॥
संजम जप तप सापरत, व्रत जुत जोग विनांण ।
आँखि तरच्छाँ ईखतां, जोता समधा जांण ॥
जोता समधा जांण अई नव जोबनाँ ।
मति सूँ देह समेत उपज्जी मो मनाँ ॥
रंभा करै बखांण तुहालै रूपरा ।
अहराँ दीजै पान अबै किण ऊपरा ॥ १० ॥
दुरै निहारै दंतड़ा, बादल़ दामणियाँह ।
अति ऊजल़ त्याँ आगल़ी, को हीरा कणियाँह ॥

( ९ ) परतख = प्रत्यक्ष । अधर = होठ । प्रवाल़ = मूँगा । जोड़ै = बराबर । जिसा = जैसे । सहियां = सखियां । भाल़ = देखकर । कुसभावनै = पतलेपन को । बधावै = बढ़ाता है । चावनै = आनंद को । अणु = सूक्ष्म । बचनीय = कहने योग्य । जिकांरी = जिसकी । दाखि = कह । रती = किंचित भी । दुरी = छिपी ।

( १० ) सापरत = [illegible] । जुत = युक्त । विनांण = [illegible] । तरच्छाँ = तिरछी, टेढ़ी । ईखतां = देखते । समधा = साधारण बात है । समेत = सहित । तुहालै = तेरे । अहराँ = होठों को ।

( ११ ) दुरै = छिपे । दंतड़ा = दांत । दामणियांह = बिजली ।

की हीरा कणियाह अलौकिक कांतरी।
पूछै को कथ कुंदकलीरै पांतरी॥
वरणी उपमा सार विचारि विचक्षणा।
लिया सखी आवसार बर्णीसा लक्षणा॥ ११॥

मत्र बसीकर गानसै, वाणी रस बरसंत।
सरसुति वीणा प्रगट सुर कोयल लाज करंत॥
कोयल लाज करंत जाणै कामनै।
रीझावै अदभूत आलापिरामनै॥
काज सहो किसराय सुणबो कीजिए।
प्याला श्रवणा पूर सुधारस पीजिए॥ १२॥

अधुरां हसणां सूं उदै, विमल हास दुतिवंत।
सो संध्या सूं चंद्रिका, फैली जाण फवंत॥
फैली जांण फवंत चकोरा चाहरी।
उड़ी रज घणसार अनंत उजासरी॥

त्यां आगलो = उनके आगे, उनके सामने। जो = यथा। कांतरी = कांति की। कथ = बात। पांतरी = पंक्ति की। विचक्षणा = राच लणां ने।

( १२ ) बसीकर = वश में करनेवाला। वाणी = वाणी। सरसुति = सरस्वती। कामनै = कामदेव को। रामनै = राम। सुणबो कीजिए = सुना कीजिए। पूर = भरकर, पूर्ण।

( १३ ) अधुरां = होंठ। हसणां = हंसी, हास। उदै = प्रकट हुई। संध्यासूं = सायंकाल से। चाहरी = चकोरों की। फैली = बिखरी, फैली। घणसार = कपूर।

विस्व सुबासित होय जिके मुख बासहूँ ।
मल्लियाचिल महकंत बसंत बिलासहूँ ॥ १३ ॥
अलक डोरि तिल चड़स वो, निरमल चिबुक निवांण ।
सींचै नित माली समर, प्रेम बाग पहचांण ॥
प्रेम बाग पहचाँण निरंतर पाल ही ।
ग्रीवा कंबु कपोत गरब्बाँ गाल ही ॥
कंठसरी बहु क्रांति मिली मुकताहलां ।
हिंडुल नौसरहार, जलूम जलाहलां ॥ १४ ॥
बपत मृगासण त्रिपत बिण, देखत रहत पिय दीठ ।
तिम इंद्रासण बिण त्रिपत, पियकर परसत पीठ ॥
पियकर परसत पीठ घणो सुख पावही ।
कदली पत्राकार प्रसिद्ध कहावही ॥
साचो पढवा पाठ सँवारी सोहणो ।
मन मथ राजकुँवाँरक पाटो मोहणो ॥ १५ ॥

( १४ ) चड़स = पानी निकालने का चरस । चिबुक = ठोड़ी । निवाण = कूप, कूआं । समर = स्मर, कामदेव । ग्रीवा = गरदन । कंबु = शंख । कपोत = कबूतर । गरब्बां = गर्व को । गाली = नाश करती है । कंठसरी = कंठसरी, गले में पहनने का भूषण । मुकताहला = मोती । हिंडुल = हिलता हुआ । जलूस = तेजस्वी । जलाहलां = झलझलाट करता हुआ ।

( १५ ) बपत = समय । मृगासण = मृगासन, मृग के चमड़े का आसन । त्रिपत बिण = बिना तृप्त हुए, बिना इच्छा पूरी हुए । दीठ = दृष्टि । कदली = केला । पत्राकार = पत्ते की शकल का, पत्ते के आकार

भामणिग सुकमार भुज, साहब गलै सुहाय।
जाँण नाल जलजातरा, कामपताका काय॥
कामपताका काय उदै जे अंकड़ा।
राजस तजि चित रसिक सोक्याँ संकड़ा॥
पतपच्छी जुग पाँण सरोरुह पल्लवा।
नग जुत बलय अमोल दिया जे निधनवां॥ १६॥
अति ऊँचा तिगरै उरज, जाँणिया विमवा ओप।
जोड़ै लागै जगत में, गिर गज कुंभ गिरीस॥
गिर गज कुंभ गिरीस प्रवीणां गाविया।
सुबरण बरण सुढंग कठोर सुहाविया॥
सोहै अँगिया ओट हरी रँग साज में।
दुड़िया चकवा दोय सिंवाल समाज में॥ १७॥

का। पढवा = पढ़ने को। सँवारि। बनाई। गोरहर्या = पुहारनी। पाटी = तख्ती, स्लेट।

( १६ ) भामणिग = स्त्री के, राधिका के। गलै - गरदन में। जांण = मानो ( उत्प्रेक्षा-वाचक )। नाल = कमल-तंतु। कामपताका काय = कामदेव की ध्वजा का दंड। उदै जे अंकड़ा = विजय के अंक उदय करनेवाली। राजस - राजसी। रसिक - राजरस, राज के बड़े बड़े वैभव। सोक्यां = सपत्नियों को। संकड़ा = संकुचित। पतपच्छी प्रति-पच्छी। सरोरुह = कमल। नग जुत = रत्न सहित। निधनवां - निर्द्धनों को।

( १७ ) उरज कुच। जोड़ै लागै समानता करना। गिर = गिरि, पर्वत। गिरीस = महादेव का लिंग। अँगिया = कंचुकी। ओट = आड़ में। दुड़िया = दबके हुए, छिपे हुए।

सुच्छम रोमावलि सुखद, बरणी उकति बिचार ।
सांप्रति लच्छन सिंगार री, ग्रंत किया बिसतार ॥
ग्रंत किया बिसतार मनोभव बागवां ।
इंखे नाभि निवाण उपाई अनुभवां ॥
कटि सुच्छमता हूँत लजांणे कहरी ।
हरी अणिमा सिद्धि बराबर देहरी ॥ १८ ॥
जंघ सलोम अनूप जुग, नाजुक पगां निदान ।
जोल करीकर कलभ के, सकरकूर सामान ॥
सकरकूर सामान सराहैं सहचरी ।
काम विरंचि विमाण क श्री हथसूं करी ॥
जेहरि घूघर माल पगां झुणकें जियां ।
कूंजें वारिज पुंज बचा कलहंसियां ॥ १९ ॥
सहज ललाई सांपरत प्रीतम प्यारी पाय ।
निरखे भरसे नाथणी, जावक दे मिलि जाय ॥

( १८ ) सुच्छम = सूक्ष्म । सांप्रति = [illegible] । सिणगार री = शृंगार की । मनोभव = कामदेव । बागवां = बागवान, माली । इंखे = [illegible] । उपाई = पैदा की । अनुभवां = अनुभव से ।

( १९ ) सलोम = रोम सहित । निदान = निश्चय । करीकर = हाथी की सूँड । कलभ = हाथी का बच्चा । सकरकूर = [illegible] मछली । सराहैं = प्रशंसा करती हैं । सहचरी = सखियां । काम विरंचि = [illegible] । विमाण = विमान । [illegible] पायल [illegible] । झुणके = झनकार करती है, बजती है । जियां = जैसे । कूंजें = बोलें । वारिज पुंज = श्वेत कमल । बचा = बच्चा ।

जावक दे मिलि जाय न जावै जाँणियो।
पै मिलियो जल जाय किसूँ पहचाणियो॥
सुरख सरोरुह खंड लियाँ सुख साजही।
कै अरुणोदय कांति रही मिलि राजही॥ २० ॥
बणियाँ अणवट बीछिया, पद पल्लव छवि पूर।
की कोमलता रँग कहाँ, चंपकली चकचूर॥
चंपकली चकचूर टली चित चाहसूँ।
नख कमलाँ दल नीर क हीर निबाहसूँ॥
कुसमक तारां ब्रंद हुलास हिय करै।
दस तन धरिया काय सुधाधर दूजरै॥ २१ ॥
कटि हंदो करनाटियाँ, जंघा उतकलियाँह।
गो गुज्जरियाँ कुच गरब, केसाँ केरलियाँह॥
केसाँ केरलियाँह बखाँणन कीजही।
किसूँ तिरोहित नारि क, कच्छ कहीजही॥

---

( २० ) नायणी = नाइन। पै मिलियो जल जाय किसूँ पहचाणियो = दूध में मिला जल कैसे पहचाना जा सकता है। सुरख = सुर्ख, लाल।

( २१ ) अणवट, बीछिया = पैर के आभूषण। पद पल्लव = अँगुलियों में। की = क्या। चकचूर = पिस गई। टली = अलग हो गई। काय = कै, अथवा। सुधाधर = चंद्रमा। दूजरै = द्वितीया का।

( २२ ) कटि हंदो = कमर का। करनाटियां = करनाटक देश की स्त्रियों की। उतकलियांह = उत्कल देश की स्त्रियों की। गो = गया। गुजरियांह = गुजरात की स्त्रियों का। केरलियांह = केरल देश की स्त्रियों

बामा भार नितंब तिलंगी बारियाँ ।
नहीं ° इसी अँग बास क सिंहलनारियाँ ॥ २२ ॥
जिण विध कवि मुखसूँ जिलै, बधती ह्वै वरणाह ।
जुवती तन हूँता जिलह, इण विध आभरणाँह ॥
इण विध आभरणाँह मनूँ मुकता मिली ।
छक तरुणाई छोल पयोनिध ज्यूँ छिली ॥
सो थिर राखण काज क भूषण साजिया ।
जड़िया रच्छया जंत्र मनोज मुनी दिया ॥ २३ ॥
सोहै नीलांबर सहत प्रमुदा प्रीत प्रमाँण ।
चंपकमाला हरत चित, जुत भमरावलि जाँण ॥
जुत भमरावलि जाँण जिलहै तन जागणी ।
बादल माँझल बीज, प्रकास विलागणी ॥
काय अमावस रैण प्रसंसा कीजती ।
दीवाली सुखदाय प्रभा दरसीजती ॥ २४ ॥

का । किसूँ = क्या । तिरोहित = तिरहुत । बामा = स्त्री । बारियां = स्त्रियों का । बास = सुगंध ।

( २३ ) जिण विध = जिस तरह । जिलै = आब, सुंदरता । बधती = चढ़ती हुई । वरणाह = वर्णों की, अक्षरों की । तन हूंता = शरीर से । आभरणांह = आभूषणों की । छक = बहुत । छोल = लहर । छिली = उमड़ी, किनारा छोड़कर बाहर आई । थिर = स्थिर । राखण काज = रक्षण के लिए । रच्छया = रक्षा । मनोज = कामदेव ।

( २४ ) नीलांबर = नीले वस्त्र । सहत = सहित । प्रमुदा = स्त्री । जुत = सहित । जिलहै = आब, सुंदरता । जागणी = जगनेवाली ।

बेलाँ तरवर बीटियाँ, दुति कुसुमाँ दरसंत।
निजर पिया ब्रज नाहरै, बनमय सदन बसंत॥
बनमय सदन बसंत अलोक बणाविया।
गुण सुक पिक कलहंसक मोराँ गाविया॥
नेह घणै जिण ठोड़ पधारै नायका।
गहि बीणाँ सुर गान हुवै जस गायका॥ २५॥
स्याँम नदी काँठै सघण, तरवर स्याँम तमाल़।
संजुत स्यामा सायधण, साहब स्याँम समाल़॥
साहब स्याँम समाल़ सहेत सहेलियाँ।
रूड़ै नीर सुगंध धरा रँगरेलियाँ॥
रति अनुकूल़ विलास घणां रलियामणाँ।
भीषग दीसै इंद्र लिवूँ हूँ भाँमणाँ॥ २६॥

---

माँझल़ = मध्य। बीज = बिजली। बिल़ागणी = रहनेवाली। रैण = रात्रि। दोवाल़ी = दीपावलि। प्रभा = कांति। दरसीजही = दिखाई देती है।

( २५ ) बेलां = लताएँ। तरवर = वृक्ष। बीटियाँ = घेरा डालने से। दुति = कांति। नाहरै = नाथ के, स्वामी के। मय = मुआफिक। सदन = घर। अलोक = अलौकिक। बणाविया = बनाए। सुक = शुक, तोता। पिक = कोयल। मोरां = मयूर। घणै = अधिक। ठोड़ = स्थान पर।

( २६ ) स्यांम नदी = यमुना। कांठै = किनारे। सघण = सघन। संजुत = संयुक्त। स्यामा = राधिका। सायधण = स्त्री। समाल़ = माला सहित। सहेत = सहित। रूड़ै = अच्छे। रँगरेलियां = रंग बरसाया।

लहलहती नाचै लता, पवन भँगीती पाय।
पंखावरदारी करै, रंभ बिचै बणराय।
रंभ बिचै बणराय जिल्है दल जाहरां।
नमि नमि द्रुम फल फूल करै नव छाहरां॥
आंण मति अनुसार उकत्ती अंकड़ा।
बांकै कही झमाल बिहारी बंकड़ा॥ २७॥

इति झमाल।

---

रलियामणां = सुंदर। भीपग = [illegible]। दीसै = दिखाई पड़ता है। लिखूं = लेता हूँ। हू = मैं। [illegible] = [illegible]।

( २७ ) भँगीती पाय = [illegible]। पंखावरदारी करै = पंखा हिलाने का कार्य करते हैं। रंभ = केला। बणराय = वनराय। जिल्है दल = पत्तों का तेज। द्रुम = वृक्ष। नवछाहरां = न्योछावर। आंण = लाकर। उकत्ती = उक्ति। अंकड़ा = अक्षर। बांकै = कविराजा बांकीदास। झमाल = एक जाति का गीत, जिसमें प्रथम एक दोहा छंद होता है, दोहे के अंतिम चरण को आगे सिंहावलोकन करके इक्कीस इक्कीस मात्राओं के चार पद रखे जाते हैं। बिहारी बंकड़ा = हे बांके बिहारी।

नोट—इस 'झमाल' छंद [illegible] 'रघुनाथरूपक' में, जो मनसाराम उर्फ मंछ कवि द्वारा रचा [illegible] है, इस प्रकार है—

"पहले पद चन्द्रायणा, धरै [illegible] भार।
दोहा [illegible] चरणे [illegible] ॥"

इसकी टीका में [illegible] इस प्रकार [illegible]—प्रथम दोहा [illegible] फेर चंद्रायणो [illegible]। दोहा की मात्रा [illegible] पद [illegible] में १३ और दूसरे चौथे में ११ होय। चंद्रायणा की एक एक पद में २१ मात्रा होय और अनेक [illegible] ऐसे [illegible] पद होयँ और कुंडलिया की तरह दोहा के अन्तिम पद चंद्रायणा [illegible] आदि में धरै। ( रघु० [illegible], पृ० २१ )।

इति झमाल टीका समाप्त।

## ( ४ ) अथ सुजस छतीसी

सेस हिमालय स्रंग, सुरगय हय नय पय दरस ।
रुद्र सिलोचय रंग, जय जय लंकवरीस जस ॥ १ ॥
हुवा जसोधन पुरस जे, इल बड मत अवदात ।
ज्यांरी कही पुराण में, व्यास तपोधन बात ॥ २ ॥
कवियण पौहरै करन रै, नित ले ज्यांरा नाम ।
जिकै जसोधन पुरस धन, बांका करण विराम ॥ ३ ॥
निरवाहै पण आपणो, जे चाहै जस वास ।
मांगण ज्यांहूता मिले, नँह जावही निरास ॥ ४ ॥

( १ ) स्रंग = शृंग, पहाड़ की चोटी । सुर = देवता । गय = हाथी । सुरगय = ऐरावत । हय = घोड़ा । नय = नदी, गंगा । पय = दूध । दरस = दृश्य । सिलोचय = पर्वत । लंकवरीस = लंका देनेवाले, रामचंद्र ।

( २ ) जसोधन = यशस्वी । इल = पृथ्वी । बड = बड़े । मत = बुद्धि । अवदात = उज्ज्वल ।

( ३ ) पौहरै = पहर । करन रै = प्रातःकाल । पौहरै करन रै = प्रातः-काल के समय में । ज्यांरा = जिनका । करण = पाठां०—हरण ।

( ४ ) निरवाहै = निर्वाह करे पूर्ण करे । पण = प्रण, प्रतिज्ञा । आपणो = अपना । ज्यांहूता = जिनसे ।

ज्याँ जस छत्र तणावियो, माथै जगत मझार।
जिकै छत्रधर जाँणणा, सुदताराँ सिणगार ॥ ५ ॥
जस छल जागणहार, धरपुड़ त्यागणहार धिन।
अरुणानुज असवार, कर छाया ज्याँ सिर करै ॥ ६ ॥
लिख लिख बाँचै लोक, के सीखै चरचै किता।
सुणै हरण मन सोक, दाताराँ जस दूहड़ा ॥ ७ ॥
दस सिंध ऊनड़ दियो, दीधो सिर जगदेव।
बाँका जसरै वासतै, दाता नकूँ अदेव ॥ ८ ॥

---

( ५ ) ज्यां = जिन्होंने। माथै = मस्तक पर। मझार = अंदर। जिकै = उनको। सुदतारां = दानियों के।

( ६ ) धरपुड़ = पृथ्वी का पृष्ठ भाग। धिन = धन्य है। अरुणानुज = गरुड़। ज्यां = जिनके।

भावार्थ जो यश के लिये छल के समय भी जागता है उसी पृथ्वी त्यागनेवाले को धन्य है। उसके ऊपर भगवान् अपने हाथों से छाया करते हैं।

( ७ ) बांचै = पढ़ें। के = कितने ही। चरचै = चर्चा करें, आपस में बातें करें। किता = कितने ही। दूहड़ा = दोहे।

( ८ ) ऊनड़—लाखा फूलाणी का रिश्तेदार था। सिंध को जय किया सो ही चारण को दान दे दिया। यह गीत है—

"भाई एहा पूत जण जेहा ऊनड़ जांम।
दीधी सातों सिंधड़ी जो देवै इक गाम॥"
"पांण पटोलियो झलियो चारण कियो दिवांण।
ऊनड़ मेल्है आवियो साम्हँ ही सुरतांण॥"

जगदेव पँवार—"रासमाला" में इसकी कीर्त्ति वर्णित है। मालवे के

जस चाहै वाहै जिको, माँसाँ चूकी हड्ड ।
अखियाताँ बाताँ वचैं, जरा काल डर छड्ड ॥ ९ ॥
सदा करै सनमान, मीठा बोलै हँस मिलै ।
दिए धरा धन दान अन्न खाटै ठाकुर जिकै ॥ १० ॥
सोइ पुरस सुलच्छणा, सोइ ज पूत सपूत ।
सोइज कुलरो सेहरो, ताँडै जस रथ जूत ॥ ११ ॥
तांत तणंका गायणाँ, ईहग वरण उचार ।
सुणै नवो नित निज सुजस, साँचा ऐ सुदतार ॥ १२ ॥

उदयादित्य का छोटा पुत्र था जिसका राज्य संवत् ११४३ तक दिया है। जगदेव सिद्धराज जयसिंह का प्रधान सामंत था। बड़ा दानी और शूर-वीर था। अपना शिर दान में दिया था। बड़ी विजय की थी और दान दिए थे।

नकूँ = कुछ भी नहीं। अदेव = न देने योग्य।

( ९ ) वाहै = प्रहार करना। जिको = जो। मांसां = मांस। चूकी = चूकना। हड्ड = हड्डी। अखियातां = प्रसिद्ध। बातां = बातें। वचै = बचती है। जरा = बुढ़ापा। छड्ड = छोड़कर, पाठां०—बड्ड।

( १० ) धन = पाठां०—धर। धरा = पृथ्वी। खाटै = पैदा करे। जिकै = जो।

( ११ ) सुलच्छणो = अच्छे लक्षणों वाला। सोइज = वही। कुलरो = वंश का। सेहरो = मुकुट। ताँडै = हर्ष से उछलना, गर्जना करे। जूत = जुतकर, लगकर।

( १२ ) तांत = तांत का वाद्ययन्त्र, सारंगी आदि। तणंका = आवाज। ईहग = चारण, कवि। ऐ = ये।

आलस वालो मंगणाँ, उर मंगणाँ उदार।
बक उदाराँ विसव में, वालो जस विसतार॥ १३॥
कवि पंडित जाहिर करे, मोटांरो जस वास।
छोटांरो जसरो हुवे, पहियाँ हूँत प्रकास॥ १४॥
हातमताई हरख सूँ, पोषंतो पहियाह।
अमर नाम उणांरो, अजै, की जादा कहियाह॥ १५॥
बालपणे में बाजिया, जेहलरा जस ढोल।
नकूँ बसावै कृपण नर, बूढा ही जस बोल॥ १६॥
जस न हुवे धन जोड़ियाँ, धन दीधाँ जस होय।
बीसलदे बीकम तणो, जग में विवरो जोय॥ १७॥

( १३ ) वाल्हो = प्यारा। मगणां = याचकों को। उदार = उदार पुरुष, दानी। विसव = विश्व।

( १४ ) मोटांरो = बड़ों का। पहियाँ = पथिक। हूँत = से।

( १५ ) हातिमताई = यह फारस देश के तार नगर का रहनेवाला था और यह दुखी मनुष्यों की बहुत सहायता करता था। इसके नाम पर हातिमताई नामक एक पुस्तक है जिसमें इसका हाल लिख दिया गया है। पोषंतो = पालन-पोषण करता था। पहियाह = पथिकों का। उणांरो = उसका। अजै = आज तक। की = क्या। जादा = अधिक। कहियांह = कहने से।

( १६ ) बालपणे = बाल्यावस्था। जेहलरा = जेहा भाराणी के। यह जेहा भाराणी कच्छ के राजा भारमल का पुत्र बड़ा दानी, पराक्रमी और यशस्वी था। नकूँ = कुछ भी नहीं। बूढा ही जस बोल = वृद्ध होने पर भी यश प्राप्त नहीं करते।

( १७ ) बीसलदे = यह अर्णोराज का पुत्र था। यह बड़ा

जाहर जस खुमबोह जुत, सुदता कुसम सुसोह :
काँटाँ सूँ भूँडा कपण, वप अपजस बदबोह ॥ १८ ॥
कपणाँ जस भावै कठै, विधि विमुखाँनूँ वेद ।
बाँका भोजन नँह रुचै, ज्याँरै वप ज्वर खेद ॥ १९ ॥
कपणाँ जस भावै कठै, गुरु विमुखाँ नूँ ग्याँन ।
असुराँ दया न ऊपजै, चंचल चित्ताँ ध्यान ॥ २० ॥
मैलो अत अदतार मन, रुच जस तणी रहै न ।
तन कालो विसहर तणो, कंचुक सेत सहै न ॥ २१ ॥

विद्वान् और पंडित-प्रेमी था। इसने अजमेर में बड़ी भारी एक पाठशाला बनाई जिसके खंडहर ढाई दिन के झोंपड़े के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह बड़ा विजयशाली और धनशाली था। आना सागर में इसने करोड़ों की संपत्ति गाड़ दी थी इसी से यह प्रसिद्ध है "बीसकोड बीसलदेवाली पड़गी ऊँडे पाणी"। इसने चारण भाट आदि को बहुत दान नहीं दिया इससे इसकी प्रशंसा नहीं करते।

वीकम = यह विक्रमादित्य उज्जैन के चक्रवर्ती राजा अत्यंत दानी, शूर-वीर, विद्वान् और संवतकार हुआ है।

विवरो = विवर्ण ।

( १८ ) जाहर = प्रकट। खुमबोह = सुगंध। जुत = युक्त, सहित। सुदता = दानी। सुसोह = सुशोभित होता है, वह। काँटां सूँ = कंटकों से। भूँडा = बुरा। वप = शरीर। बदबोह = दुर्गंध।

( १९ ) भावै = अच्छा लगता है। कठै = कहां। विधि = ईश्वर, कर्म। विमुखाँनूँ = प्रतिकूलों को, विरुद्ध रहनेवालों को। खेद = दुःख।

(२०) ग्यांन = ज्ञान। असुरां = राक्षसों को। ऊपजै = उत्पन्न होती है।

( २१ ) मैलो = मलीन। अत = अति, ज्यादा। रुच = रुचि,

पंगी गंग प्रवाह, निरमल तन कीधो नहीं।
चित क्यूँ राखै चाह, तिके सरग पावण तणी ॥ २२ ॥
है संबोधन वासतै, बलै पिछाँणण बंक।
पिण अदतारां नाम नँह, अमर होण इक अंक ॥ २३ ॥
जस गाडा भरियो जुड़ै, जग सो करो जतन्न।
औ आभरणाँ आभरण, रतनां सिरै रतन्न ॥ २४ ॥
कृपणाँरी मतवाल की, करसण खारच खेत।
नीर विलोणो है नहीं, दत अन रोगन हेत ॥ २५ ॥

---

इच्छा। तणी = की। विसहर = सर्प। तणो = का। सेत = सफेद। रहै न = पाठां० —नरेन। सहै न = पाठां० —सदेन।

नोट—सर्प की कंचुकि सफेद होती है किंतु उसका रंग काला होने के कारण वह उसे सहन नहीं करता है और उसे त्याग देता है। और यश को भी कवियों ने सफेद कहा है सो कृपण की सर्प में उत्प्रेक्षा की है।

( २२ ) पंगी = कीर्ति। कीधो = किया। क्यूँ = क्यों। तिके = वे। सरग = स्वर्ग। पावण तणी = पाने की।

( २३ ) वासतै = लिये। बलै = पुनः, फिर। पिछांणण = पहिचानने को। पिण = परंतु। अदतारां = सूमों का। नँह = नहीं।

( २४ ) जुड़ै = इकट्ठा होना। जतन्न = यत्न, उपाय। औ = यह। सिरै = उत्तम।

( २५ ) मतवाल = नशा, मस्ती, रीझ। की = क्या। करसण = कृषि, खेती। खारच = ऊसर जमीन। विलोणो = विलोड़न करना। दत = दान। रोगन = घी। हेत = वास्ते वा पैदा करनेवाला। यथासंख्य अलंकार।

इक कपि राकस दैत इक, दूणा देाय दुजात ।
याँ जिम नाँम उदाररेा, चिरंजीव सुखदात ॥ २६ ॥
मच्छाँरै जलजीव जिम, सबजी तराँ सदीव ।
अदताराँ धन जीव इम, जस दाताराँ जीव ॥ २७ ॥
साँभल वित समपै नहीँ, बडकाँ तणाँ बखाँण ।
काहू जिका कुलीणता, उर माँझल तू आँण ॥ २८ ॥
साँस छतै जीवै सकल, ऊमररै आधार ।
जससूँ जीवै जगत में, साँस पखै सुदतार ॥ २९ ॥
आठ पौर जस इंदुरी, जिण घर दुत जागंत ।
तिण घर सूँ अपजस तिमर, अलगा थी भागंत ॥ ३० ॥

---

( २६ ) कपि = हनुमान् । राकस = राक्षस, विभीषण । दैत = दैत्य । दूणा = दुगने । देाय = दोनों । दूणा देाय = चार । दुजात = ब्राह्मण । याँ = इनका । दूणा...दुजात—पाठांतर—हिरणाँ होयहु जात । याँ—पाठां०—ज्याँ ।

नोट—संसार में ये सात चिरंजीव माने गये हैं—हनुमान्, विभीषण, बलि, कृपाचार्य, परशुराम, अश्वत्थामा, व्यास ।

( २७ ) सबजी = हरियाली, तरावट । सदोव = सदैव, हमेशा । तरां = वृक्ष ।

( २८ ) सांभल = सुनकर । वित = धन । समपै = देवे । बडकाँ तणाँ = पूर्वजों के । बखांण = यश । काहू = क्या, कैसा—अर्थात् वह कुलीन नहीं है ।

( २९ ) साँस = श्वास । छतै = मौजूद रहने से । पखै = अलग होकर ।

( ३० ) आठ पौर = अष्ट प्रहर । इंदुरी = चंद्रमा की । दुत = द्युति, कांति । अलगा = दूर । थी = से ।

जसरी गत अदभुत जिका, सत धारियाँ सुहाय ।
नर जीवै नरलोक में, जस अमरापुर जाय ॥ ३१ ॥
कुलवंती सूँ कीतरो, उलटो है आचार ।
वा न तजै घर आपरो, जग इणरो संचार ॥ ३२ ॥
नर विवने वा नँह रहै, जग में आ रह जाय ।
कुलवंती सूँ कोतरी, उलटी गति इण भाय ॥ ३३ ॥
थियो सदय सुण निज थुई, टीटभ हूत क्रसान ।
उणरा बाल उबारिया, महामंत्र जस मान ॥ ३४ ॥
दियै पैंड दातार हो, दातारारै पंथ ।
ग्यानी पुरसाँरा किया, ग्यानी चरचै ग्रंथ ॥ ३५ ॥

---

( ३१ ) गत = गति । अमरापुर = स्वर्ग । सुहाय—पाठां०—सुहुवाय ।

( ३२ ) कीतरो = कीर्तिका । उलटो — पाठां० — ऊंलै ( खिलाफ ) ।

( ३३ ) नर = पति । विवने = मरने पर । वा = वह कुलवंती स्त्री । नँह रहै = नहीं रहे, सती हो जाती है । आ = यह, यश । इण भाय = इस प्रकार ।

( ३४ ) थियो = हुआ । सदय = दयावान् । थुई = स्तुति । क्रसान = अग्नि । उणरा = उसके । बाल = बच्चे । यह कथा प्रसिद्ध है कि टीटोडी के अंडों को गजघंट के नीचे और बिल्ली के बच्चों को दाव में भगवान् ने बचाया था ।

( ३५ ) पैंड = कदम । चरचै = चर्चा करे, बातें करे ।

हुवै जेम हरहंस सूँ, वासर कमल विकास।
एम धरम जस ह्वै उभै, दत सूँ बाँकीदास ॥ ३६ ॥
सुदता इणनूँ साँभलै, अमी नजर सूँ ईख।
कपणाँरो, इण मेँ कुजस, सुजस छतीसी सीख ॥ ३७ ॥
मतो बलै जूझै सुभट, करै ग्रंथ कविराज।
दाता माया ऊधमैं, नाम उबारण काज ॥ ३८ ॥

इति सुजस-छतीसी सम्पूर्ण।

---

( ३६ ) हरहंस सूँ = सूर्य से। वासर = दिन। एम = इस तरह। उभै = दोनों। दत सूँ = दान से।

( ३७ ) सुदता = दानी। इणनूँ = इसको। अमी = अमृत। ईख = देखकर। सीख = शिक्षा।

( ३८ ) बलै = जले। जूझै = युद्ध करे। उधमैं = खर्च करे, दान दे।

इति सुजस-छतीसी टीका समाप्त।

# ( ५ ) संतोष बावनी

सोरठा

मन गज जग सर माँहि, लोभ ग्राह बस करि लियो।
तुरत छुडावण ताहि, होय संतोष हरि हमैं ॥ १ ॥

दोहा

बंक तेज कारण वणैं, निहचल तप निरदोष।
ग्यान मोक्ष कारण गिणै, सुख कारण संतोष ॥ २ ॥
आथ अटूट अखूट अन, प्रजा घणो सुखपोष।
धन बाँका ऊ ध्रंगड़ो, साहिब जे संतोष ॥ ३ ॥
सुणै पढ़ै नँह सासतर, सेवै नँह सतसंग।
सुखदायक किम साँपजै, उर संतोष अभंग ॥ ४ ॥

( १ ) मन गज = मनरूपी हाथी। जग सर = संसार-रूपी तालाब। ग्राह = मच्छ। तुरत = शीघ्र।

( २ ) बंक = बांकीदास कवि। निहचल = निश्चल, स्थिर। गिणै = माना जाता है।

( ३ ) आथ = अर्थ, धन। अटूट = जो कभी समाप्त नहीं हो, अनंत। अखूट = जो कभी कम न होता हो। अन = अन्न। घणो = अधिक। सुखपोष = सुख से पाली हुई। ऊ = वह। ध्रंगड़ो = गांव, ग्राम। ऊ—पाठा०—नँह।

( ४ ) सासतर = शास्त्र। किम = कैसे। सांपजै = उत्पन्न होवे।

सोरठा

तरु संतोष तणेह, नर छाया बैठा नहीं।
कल़कल़ती किरणेह, बाँका भटकै लोभ बन ॥ ५ ॥
अत चिंता, अभिलाष, परहर मारग पेमरो।
रे संतोषहि राख, बिण चिंता अभिलाष बिण ॥ ६ ॥

दोहा

बाँका धीरज धरण सूँ, ह्वै नहि कुंजर हाँण।
की घर घर भटका करै, कूकर अधिक कमाँण ॥ ७ ॥
उर नभ जितै न ऊगमै, औ संतोष अदीत।
नर तिसना किसना निसा, मिटै इतै नँह मीत ॥ ८ ॥
ज्यू ल्यूँ लालच खार जल़, सेवै दुरमत संग।
बाँका अत त्यूँ त्यूँ बधै, त्रसनाँ तणी तरंग ॥ ९ ॥

( ५ ) तणेह = के। कल़कल़ती = अत्यंत तेज। किरणेह = सूर्य की किरणों में, धूप में। बांका.....बन—पाठां०—'बन बन भटकै बांकला'। बांकला = बांकीदास कवि।

( ६ ) अत = अति। परहर = छोड़ो। पेमरो = प्रेम का। बिण = बिना। रे...राख —पाठां०—रे सँतोष हरि राख।

( ७ ) बांका = बांकीदास। धरण सूँ = रखने से। कुंजर = हाथी। हांण = हानि। की करै = क्या कर लेता है। भटका = भटकने से। कूकर = कुत्ता। कमांण = कमाई।

( ८ ) जितै = जब तक। ऊगमै = उदय होता है। औ = यह। अदीत = सूर्य। तिसना = तृष्णा। किसना = कृष्ण। निसा = रात्रि। इतै = इधर, ( हृदय में ) तब तक।

( ९ ) खार = मृगतृष्णा। दुरमत = खोटी बुद्धिवाला। तणी = की।

गलो कटावै लोभ यो, लोभी काटणहार।
लीजै काँनी लोभ सूँ, मिल संतोष मझार॥ १०॥
परवाही पुरसाँ तणी, मेट प्रतीत मनाँह।
वप ऊतरिया चढ़त विष, परवाही पवनाँह॥ ११॥
आवै धन ज्याँ, आवियाँ जिके नवी नित जोड़।
अदभुत गुर लालच अठै, कला सिखावै कोड़॥ १२॥
चित सूँ आगम चिंतवै, आ मजबूत उपाध।
बंक जुड़ै नँह वाछियौ, इण कारण ह्वै आध॥ १३॥
माँनवियाँ मन बन मँही, लागी लालच लाय।
बाँका इण संतोष विण, बीजै केण बुझाय॥ १४॥

---

( १० ) गलो = गर्दन। कांनी = कन्नी काटना, अलग हटना। मझार = में, अंदर।

( ११ ) परवाही = परवा रखनेवाला, खुशामदी। पुरसां तणी = मनुष्यों की। प्रतीत = विश्वास। मनांह = मन में। वप = शरीर। परवाही = पूर्व दिशा की। पवनांह = हवा से।

( १२ ) ज्यां = जिनकी। आवियां = उत्कट इच्छा, आने से। जिके = जो। नवी = नवीन। गुर = गुरु। अठै = यहां।

( १३ ) आगम = धनागम। आ = यह। उपाध = उपाधि, दुःख। वांछियौ = इच्छित ( पाठां०—वांरियो )। इण = इस। आध = आधि, अर्द्ध।

( १४ ) मांनवियां = मनुष्यों के। मँही = में। लाय = अग्नि। बीजै = दूसरा ( पाठां०—दीजै )। केण = कौन।

लालच री दौड़ै लहर, भवन बियाँ धन भाल़ ।
बैठो थावर बारमो, काँधै आण कराल़ ॥ १५ ॥
गह चढिया संतोष गज, धर पड़ ज्याँनूँ धोक ।
चढिया ज्याँनूँ चहरजे, लालच गरधभ लोक ॥ १६ ॥

सोरठा

लालच रसरै लाग, माँखी लपटाणी मधू ।
उडणो बलियो आग, जिणरै मुसकल जीवणो ॥ १७ ॥
भव दरियाव भयंद, लहराँ ऊठै लांभरी ।
माँहे ज्याँ मतमंद, मनख घणाँ डूबै मरै ॥ १८ ॥

दोहा

के प्रपंच कुपिया करै, रुपिया जोडण रोक ।
परपीड़ा पेखै नहीं, ऐ लोभीड़ा लोक ॥ १९ ॥

( १५ ) भवन...भाल़—पाठां०—भवन वियां बन लाल । दौड़ै—पाठां०—दीजे । भाल़ = देखकर । थावर = शनिश्चर । बारमो = बारहवाँ । काँधै = कंधे पर । आण = आकर ।

( १६ ) गह = ग्रहण कर । धर पड़ = पृथ्वी पर गिरकर । धोक = नमस्कार करना । चहरजे = निंदा करनी चाहिए ।

( १७ ) रसरै = रस के । मांखी = मक्खी । बलियो = पटकना, रखना; जल गया । आग = दूर, अलग; अग्नि । उडणो बलियो आग = उड़कर जाना तो दूर रहा । जिणरै = उसके । मुसकल = कठिन । जीवणो = जीना ।

( १८ ) भव = संसार । भयंद = भयंकर । ज्याँ = जिसमें । मतमंद = मूर्ख । मनख = मनुष्य । घणाँ = बहुत ।

( १९ ) कुपिया—पाठां०—रुपिया । के = कितने ही । कुपिया =

आथ धरै घर औररी, वयण इस्ट दे बीच।
आ आछी न करै अठै, न दियं पाछी नीच ॥ २० ॥
आँणे मोती अबर सूँ, चीण फिटक चित चाय।
रोहिण गिर खोजै रतन, सिंघलदीप सिधाय ॥ २१ ॥
जेथ बरफ बरसै जमै, परबत सिखरां पंत।
बंक सियालै लोभबस, भालै चीण भुटंत ॥ २२ ॥
आँणे हिलवी आदरस, वोह यमनी बोदार।
हाथी झरता हबसरा, कसतूरी नातार ॥ २३ ॥

---

क्रोध करके, चुपचाप, छुपे छुपे। रुपिया = रुपये। रोक = रोकड़ी। पर-पीड़ा = परदुःख। ए = ये।

( २० ) आथ = अर्थ, धन। औररी = दूसरे की। इस्ट = इष्टदेव। आ = यह। आछी = अच्छी। अठै = यहां। पाछी = वापिस।

( २१ ) चीण = चीन देश। फिटक = स्फटिकमणि। रोहिण गिर = एक पर्वत जहां रत्न होते हैं। सिधाय = जाकर।

( २२ ) जेथ = जहां। पंत = पंथ, मार्ग। सियालै = जाड़े का मौसम; सिवालक के पहाड़ जो बर्फ से सदा ढके रहते हैं। भालै = देखै। भुटंत = भूटान।

( २३ ) आंणे = लावै। हिलवी = हलब देश का। आदरस = आदर्श, दर्पण। वोह = बहुत। यमनी = यमन देश का। बोदार = इत्र। झरता = मद झरता। हबसरा = अफ्रीका देश का। नातार = एक देश का नाम जहां की कस्तूरी प्रसिद्ध होती है, जिसे मुश्के नातार वा नाफे नातार कहते हैं।

छाछ कवाँण खुदंग सर, समसेराँ ईरान।
आणै अस ऐराक सूँ, थटण घणो धन थान॥ २४॥
धज फरकावै जीवतो, जोड़ कोड़ धन रोक।
नाँखै मर उण ठौड़ नर, नाग हुवै निरमोक॥ २५॥
मेल मगाड़ै चंद्रमण, दहण सुथंभण दाह।
दाह हिए लालच दहण, जतन न थंभण जाह॥ २६॥

सोरठा

आवै जां अकलीम, सात हेक सुरताँणरै।
नहीं जिका दे नीम, ईछै लेवा आठमी॥ २७॥

---

( २४ ) छाछ = चाच देश। कवांण = कमान, धनुष। खुदंग = देश का नाम। समसेरां = तलवारें। अस = अश्व, घोड़ा। ऐराक सूं = राक से, जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध होते हैं। थटण = संग्रह करने को।

( २५ ) धज फरकावै = नगर-सेठ हो जाय। कोड़ = क्रोड। नांखै = रखे पटकै। उण = उस। ठौड़ = जगह। निरमोक = योनि छोड़कर, मनुष्य-योनि छोड़कर, निश्चय ही।

( २६ ) मँगाड़ै = मँगावे। चंद्रमण = चंद्रकांतमणि। दहण = अग्नि। सुथंभण = रोकने के लिये, बुझाने को। दाह = जलन। जाह = जिसका।

( २७ ) अकलीम = बादशाहत। हेक = एक। सुरतांणरै = बादशाह के। नीम = नींव, मजबूती; आधा। ईछै = इच्छा करे। आठमी = आठवीं। यह गुलिस्तां के शेर का अनुवाद है।

## दोहा

जो तू चाहै मुकत फल, धूनाँ मन धीरच्छ।
तोष मानसरवर तठै माल हुवै मा मच्छ॥ २८॥
पोहचै काला पाणियाँ, हेम भरेवा हाट।
छाती लालच छाकियाँ, करड़ी बजर कपाट॥ २९॥
नर संपत विलसै नहीं, जाझा दुख सूँ जोड़।
लियो परख लालच लहर, खरी बुरी आ खोड़॥ ३०॥
हेक रती नँह हालियो, सोनो रावण साथ।
लेजावण लोभी करै, आथ साथ असमाथ॥ ३१॥
यल ऊपर लोभी अपत, नँह राखै निज नाम।
यल भीतर खाटे अधम, दाटे राखै दाम॥ ३२॥

---

( २८ ) धूनां = उन्मत्त। धीरच्छ = धैर्य्य रख। तठै = वहां। मा = नहीं। माल = माल्ह, आनंद कर।

हे उन्मत्त मन हंस! यदि तू मुक्ति मोती चाहता है तो संतोषरूपी मानसरोवर में हंस ही रह उसमें मच्छ मत बन।

( २९ ) हेम = सोना। भरेवा = भरने के लिये। छाकियां = तृप्त हुए, छके हुए। करड़ी = कठिन, सख्त।

( ३० ) जाझा = अधिक। खरी = सच्ची। आ = यह। खोड़ = रोग।

( ३१ ) हेक = एक। हालियो = चला। आथ = धन, द्रव्य। असमाथ = असमर्थता।

( ३२ ) यल = पृथ्वी। अपत = पुत्र; अप्रतिष्ठित; निर्लज्ज। खाटे = पैदा करके। दाटे = दबाकर।

सोरठा

चढियम जे कर चाह, लालच घोड़ै ललकणें ।
बाँका ह्वै बदराह, पड़िया दीठा पुरषड़ा ॥ ३३ ॥

दोहा

नाचै लाज निवार नित, बाँका जाण बनोक ।
जग में भटकै स्वान जिम, लोभ तणैं बस लोक ॥ ३४ ॥
नागलोक नरलोक की, नँह सुरलोक समाय ।
जेथ तेथ प्राणी जलै, लालच हंदी लाय ॥ ३५ ॥
लोभी कापड़ ढकिकया, तोपिण उरियाँ तेह ।
है उरियाँ हो ढँकिया, जन संतोषी जेह ॥ ३६ ॥
वायक सतगुर वैदरो, घणो करै हित घोष ।
रै इण लालच रोगरो, सद औषद संतोष ॥ ३७ ॥

---

( ३३ ) चाह = इच्छा । ललकणें = कूदते हुए । बदराह = कुमार्ग । दीठा = दिखाई पड़े ।

( ३४ ) निवार = छोड़कर । बनोक = बंदर । भटकै = डोलते फिरते हैं । तणैं = के ।

( ३५ ) नरलोक = पृथ्वी । जेथ = जहां । तेथ = तहां । हंदी = की । लाय = अग्नि ।

( ३६ ) कापड़ = कपड़े, वस्त्र । तोपिण = तो भी । उरियां = नंगे । तेह = वह । जेह = जो ।

( ३७ ) घणो = अधिक । घोष = घोषित । इण = इस । सद = सच्चा ।

हिये बसाई हरष सूँ, मधुसूदन महाराज।
नर जिणसूँ ललचै नहीं, सेा त्रिभुअण सिरताज ॥ ३८ ॥
गुरु प्रसाद संतेाष गज, जे नर बैठा जाय।
जग लालच कूकर जियाँ, लाल सकै न लगाय ॥ ३९ ॥

सेारठा

जे संतेाष सुमेर, चढ़ बैठा मानव चतुर।
देख नवै ज्याँ देर, कुवचन सर लागै कठै ॥ ४० ॥

दोहा

सबर राख कुसमै समै, कासूँ घबर करीस।
खिण खिण ले जगची खबर, जबर सगत जगदीस ॥ ४१ ॥
जग संतेाष तुषार नर, बसै निरंतर बंक।
तियाँ लेाभ ग्रीषम तणी, सुपनेंहीं नँह संक ॥ ४२ ॥

---

( ३८ ) मधुसूदन = विष्णु। जिणसूँ = जिससे। त्रिभुअण = त्रिभुवन, तीनों लेाक।

( ३९ ) लाल...लगाय—पाठां०—लाल सकै नँह लाय। कूकर = कुत्ता। जियां = जैसे। लाल = राल, पतला थूक।

( ४० ) देख...देर—पाठा०—देख नजर ज्यां देर। सर—पाठां०—रज। देर = देकर, मारकर। सर = बाण। कठै = कहां।

( ४१ ) सबर = संतेाष। कुसमै = बुरे समय पर। समै = अच्छे समय पर। कासूँ = किससे। घबर = घबराहट। करीस = करै। खिण खिण = क्षण क्षण। जगची = संसार की। जबर = बलवती। सगत = शक्ति।

( ४२ ) जग—पाठा०—नर, नग। तुषार = ठंडक, ठंडे

सिध साधक राखै सबर, सबर तजै मतमंद ।
सबर काज सुधरै सहू, साँई सबर पसंद ॥ ४३ ॥
जिण दिन ओ मन जाणसी, सोनो धूड़ समान ।
उण दिन सूरज ऊगसी, सोनारो सुखदान ॥ ४४ ॥
जग थित झूठी जाणणी, मूठी भीड़ म रख्ख ।
माया मेवो माडुवाँ, चंगा चाखव चख्ख ॥ ४५ ॥

सोरठा

दुज जंगम दुरवेस, जोगी संन्यासी जती ।
लेाभ न राखै लेस, बाँका उणनूँ वंदिये ॥ ४६ ॥

---

जल के कण । निरंतर = लगातार । बंक = बाँकीदास । तियां = उसको । तणी = की । सुपनें ही = स्वप्न में भी । संक = शंका ।

( ४३ ) सिध = सिद्ध पुरुष । सहू = सब । साँई = मालिक, ईश्वर ।

( ४४ ) जिण = जिस । ओ = यह । जाणसी = जानेगा । धूड़ = धूल, मिट्टी । उण = उस । ऊगसी = उदय होगा । सोनारो = स्वर्ण का । सुखदान = सुखदाई ।

( ४५ ) थित = स्थिति । मूठी = मुष्टिका । भीड़ = दबाकर । म = मत । माडुवां = मनुष्य । चंगा = उज्ज्वल चित्तवाले । चाखव = खिलावो ।

( ४६ ) जंगम—पाठां०—रंगम । दुज = द्विज, ब्राह्मण । जंगम = एक संप्रदाय के साधु । दुरवेस = दरवेश, फकीर । लेस = लेशमात्र, किंचित् भी । बांका = बांकीदास कवि । उणनूँ = उसको ।

दोहा

ज्यांरै खाख बिछावणां, ओढणनैं आकास।
ब्रह्म पोष संतोष वित, पूरण सुख त्यां पास ॥ ४७ ॥
खलक मँही वै खोजणां, सुच प्रसन्न सुख संत।
धार जिकै संतोष धन, विण परवाह वसंत ॥ ४८ ॥
बाँका हरष न व्रधि सूँ, हाण हुवाँ नँह सोक।
हरि संतोष दियौ हिये, तिणनूँ दीध त्रिलोक ॥ ४९ ॥
आया जेथ प्रसन्न ह्वै, वधै घटै नँह व्रत्त।
प्रभु राखै उण पाँखड़ी, सदा अमीणों सत्त ॥ ५० ॥
बाँका वेद पुराण बिच, सायद आ छै सूत।
सुख संतोष सराहियो, आपदत्त अबधूत ॥ ५१ ॥

---

( ४७ ) पोष--पाठां०--पेख। वित--पाठां०--वित। ज्यांरै = जिनके। खाख = मिट्टी। ओढणनूँ = ओढ़ने को। पोष = शरण, आधार। वित = धन। त्यां = उनके।

( ४८ ) खलक......सुख संत--पाठां०--पिला केण उचखा चण। सुयप रत सुख संत। खलक = संसार। मँही = में, अंदर। खोजणां = तलाश करना चाहिए। सुच = पवित्र। विण = विना।

( ४९ ) व्रधि सूँ = वृद्धि से, बढ़ने से। हाण = हानि, नुकसान। तिणनूँ = उसको।

( ५० ) व्रत--पाठां०--वृत्त। सत्त--पाठां०--चित्त। जेथ = जहां। उण = उस। पांखड़ी = पखड़ी। अमीणों = हमारा।

जो आ जाय उसी में प्रसन्न रहूं और मेरे चित्त की वृत्ति कभी घटे बढ़े नहीं, ईश्वर मेरा सत्त इसी पंखड़ी पर रखे।

( ५१ ) सायद = साक्षी। आ = यह। छै = । सूत = ऋषि का

लालच बलती लाय में, बालो बडी बलाय।
बहती नदी बहाय द्यो, ह्वै राजी हरिराय ॥ ५२ ॥
मन संतोष प्रकासवै, बन श्रीखंड विकास।
आलस उरग न आभड़ै, तो की कहणो तास ॥ ५३ ॥
सा पुरषाँ संतोषिया, खाँणाँ जवहरषाँण।
बेलाँ चित्रा बेलड़ी, पारस सयल पखाँण ॥ ५४ ॥
अट्ठारासै अठंतरे मांजी फागण मास।
सुद तेरस संतोष गुण, बरणे बाँकीदास ॥ ५५ ॥

इति संतोष बावनी समाप्त।

---

नाम। सराहियो = प्रशंसा की। आपदत्त = दत्तात्रेय महामुनि। अबधूत = जोगी, महामुनि।

( ५२ ) बलती = जलती हुई। लाय = अग्नि। बालो = जलाओ। बहाय द्यो = बहा दो।

( ५३ ) श्रीखंड = चंदन। उरग = सर्प। आभड़ै = लिपटे नहीं। की = क्या। तास = उसका।

( ५४ ) सा = अच्छे। खाँणां = खानों में। जवहर = जवाहिरात। बेलां = बेल, लता। चित्रा = एक प्रकार की उत्तम बेलड़ी। बेलड़ी = बेल, लता। सयल = शैल, पर्वत। पखाँण = पत्थर।

( ५५ ) अट्ठारासै अठंतरे = १८७८ संवत्। बरणे = वर्णन किया।

इति संतोषबावनी की टीका सम्पूर्ण।

# ( ६ ) अथ सिधराव-छतीसी

मोताहल मय छत्र सिर, मानसरोवर राय।
देवी गूजरखंडरी, श्रीबहिचरा सहाय ॥ १ ॥
कुंजर जिणरै श्रीकलस, अलहणपुर आशाँण।
सो चालुक जैसिंघदे, गूजर वै सुरताँण ॥ २ ॥
तो चरणाँ लागै तिको, चालुक करन सुजाव।
नर गरिमा महिमा लहै, साँचौ तूँ सिधराव ॥ ३ ॥

( १ ) मोताहल = मोती। मानसरोवर जयसिंह की माता मीलनदेवी का बंधाया हुआ बड़ा तालाब वीरम गांव के पास है। गूजरखंडरी = गुजरात देश की। श्रीबहिचरा = श्रीबहुचरा एक देवी हैं जिनका मंदिर आबू पर है।

( २ ) कुंजर = हाथी। जिणरै = जिसके। श्रीकलस = जयसिंह सिद्धराज के हाथी का नाम। "रासमाला" गुजराती (पृ० १२६) में इसके हाथी का नाम "यश-पटह" लिखा है। अलहणपुर = अन्हिलवाड़ा, यह जयसिंह सिद्धराज की राजधानी थी। आशांण = स्थान। चालुक = चालुक्य क्षत्रियों की एक शाखा जो सोलंकी प्रसिद्ध है। जैसिंघदे = अन्हिलवाड़े का राजा। गूजर = गुजरात। वै = वाला, का। सुरतांण = बादशाह, सम्राट्।

( ३ ) तिको = वह। सुजाव = पुत्र। सिधराव = अन्हिलवाड़े का राजा जिसका पूरा नाम जयसिंह सिद्धराज था। करन = कर्ण, जयसिंह का पिता।

नगर नाम उपनाम निज, तैं चालुक जैसींग ।
रुद्र महालय सूँ किया, धर पुड़ साँचा धींग ॥ ४ ॥

सोरठा

गुडि श्रीकलस गयंद, चालुक तूँ जिण दिस चढै ।
उण दिसरा नरयंद, सकलस आवै सामहाँ ॥ ५ ॥

दोहा

रेवा सागर अमल में, आगै हो अरड़ींग ।
हमैं सिंध सागर हठी, अपणायो तैं सींग ॥ ६ ॥
तैं गज गुडियो श्रीकलस, बिच दल करूँ बखाँण ।
गिर कुल रूप सपंख गिर, जलनिधि माँझल जाँण ॥ ७ ॥
कोकन सिर खड़िया कटक, तैं सिधराव अभंग ।
दिन सकुचीजै कोकनद, कोक न कोकी संग ॥ ८ ॥

---

( ४ ) महालय सूँ = महादेव का मंदिर । धर पुड़ = पृथ्वी पर । धींग = जबरदस्त, साहसी ।

( ५ ) गुडि = चलाकर । गयंद = हाथी । उण = उस । नरयंद = राजा लोग । सकलस = सब कलश लेकर । सामहाँ = सम्मुख ।

( ६ ) रेवा सागर = रेवा नदी से सागर देश तक वा समुद्र तक । अमल में = अधिकार में । अरड़ींग = जबरदस्त । हमैं = अब । सिंध = जोड़े देश के सिंध नाम के राजा को जीता अथवा जयसिंह सिद्धराज । सींग = पशु वा शृंगवेरी देश दक्षिण में ।

( ७ ) दल = फौज । सपंखगिर = परवाला पर्वत जैसे समुद्र में दौड़ रहा हो ( ऐसा तेरा हाथी दौड़ता है और विजय कराता है ) ।

( ८ ) कोकन = कोंकण देश दक्षिण में । खड़िया = चलाए ।

सहियौ नँह जैसिंघदे, सज्य असज्य प्रताप।
सबला दल रोक न सकै, दे कोंकन तज दाप ॥ ९ ॥
लीधो दल परमार दल, आवू भोलेराव।
गाजे जादव देवगिर, लीधो करन सुजाव ॥ १० ॥
जोरावर तपियो जठै, भूपत जादव भाण।
गाँजै तूँ सो देवगिर, गूजर वै सुरताँण ॥ ११ ॥
बींधा राघव एक सर, सात ताल इम सींग।
सात देस कोंकन लिया, इक प्रताप मूँ धींग ॥ १२ ॥

कटक = फौज। सकुचीजै = संकुचित होते हैं। कोकनद = कुमुदिनी। कोक = चकवा। कोकी = चकवी (लशकर की धूलि उड़ने से दिन की रात हो जाती है)।

( ९ ) सज्य असज्य = सजे और बिना सजे। सबला = बलवान्। दाप = गर्व।

( १० ) भोलेराव = भोला भीम, दूसरा भीम, जो इसी सोलंकी वंश में बड़ा प्रतापी हुआ और जिसको भोला भीम भी कहते हैं। यह सोमेश्वर और पृथ्वीराज चौहान से लड़ा था। १२३५ से १२९८ तक राज्य किया था। देवगिरि = देवगिर के यादवों को हराया। यह दक्षिण में यादवों का बड़ा राज्य था।

( ११ ) जोरावर = जबरदस्त, बलवान्। भूपत = भूपति राजा। जादव = क्षत्रियों की एक शाखा। भाण = यादव राजा। गाँजै = नाश किया वा गर्व गंजन किया। देवगिरि नगर महाराष्ट्र देश में यादव राजाओं का प्रसिद्ध नगर था।

( १२ ) बींधा = वेधन किए, छेदे। सींग = जयसिंह सिद्धराज। सात देस = कोंकण देश के सात परगने का खंड। धींग = बलवान्, प्रतापी।

ले लच्छी मरहट्टरी, गूजर खंड अधीस।
आय महालच्छी चरण, सींग नमायो सीस ॥ १३ ॥
कवि आखर ज्यूँ करन तण, मरहट्टी महिलाव।
कुच आधा ढकिया निरखि, रीधौ चालुक राव ॥ १४ ॥
द्रविड़ कियो दहबाट तैं, रूठै चालुक राँण।
पाया गूजर खंड पत, क्रतमाला केकाँण ॥ १५ ॥
कहिया था आगै कथन, समझ प्रभाकर भट्ट।
साँचा कीधा सींग तैं, अंध्र करे दहबट्ट ॥ १६ ॥
पह चालुक धनवंत पुर, लाँठै लूट लियाह।
काँठै नदी कवेरजा, खेमा खड़ा कियाह ॥ १७ ॥

( १३ ) लच्छी = लक्ष्मी। मरहट्टरी = महाराष्ट्र देश की। अधीस = स्वामी। महालच्छी = महालक्ष्मी, जयसिंह की इष्टदेवी।

( १४ ) आखर = अक्षर। करन तण = कर्ण का पुत्र। महिलाव = स्त्रियों के। आधा = अर्द्ध। रीधौ = प्रसन्न हुआ। चालुक राव = चालुक्य राजा जयसिंह सिद्धराज। ( लाट देश की स्त्रियों की प्रशंसा है। )

( १५ ) दहबाट = नाश। रूठै = रुष्ट होने पर। क्रतमाला = कीर्त्ति की विजय-माल। केकांण = घोड़ा।

( १६ ) आगै = पहले। प्रभाकर भट्ट = यह प्रसिद्ध मीमांसक हुए हैं जो शंकराचार्य के समकालीन हैं। अंध्र = आंध्र देश दक्षिण में, जो गोदावरी और कृष्णा नदियों के बीच में है।

( १७ ) पह = राजा। धनवंत = मालदार, धनवान्। लाँठै = जबरदस्ती। काँठै = किनारा, पास। कोल देश के पास कावेरी नदी है वहाँ फौज का डेरा किया।

सिंधुर मदझर सिद्धरा, ऊखेड़ै बणराय।<br>
तज कावेरी कमल बन, छपदाँ लाँधा छाय॥ १८॥<br>
कावेरी जल श्रीकलस, घसियेा मनमुख धार।<br>
ऐरावत किर आवियेा, मंदायिणी मझार॥ १९॥<br>
कर सूँ कमल कवेरजा, निज सिर नाँखै नाग।<br>
पितनूँ कमलाँ पूजही, बारण मुख बड भाग॥ २०॥<br>
राजा दूजेा मूलरज, दिखणाताँ दल लोप।<br>
अडर मलगिर आवियेा, सुरपत जेम सकोप॥ २१॥

( १८ ) सिंधुर = हाथी। सिद्धरा = सिद्धराज जयसिंह का। ऊखेड़ै = उखाड़ फेंकता है। बणराय = सिंह, वृक्ष को। कावेरी = नदी। कमल बन = वन जिसमें कमल बहुत हैं। छपदा = भौंरे। लाँधा छाय = छा लिया।

( १९ ) किर = मानेा, समान। मंदायिणी = मंदाकिनी, स्वर्ग की गंगा। मझार = में, अंदर।

( २० ) कवेरजा = कावेरी नदी। नांखै = डाले। नाग = हाथी पितनूँ = पिता को, महादेव को। कमलां = कमलो से। बारण = हाथी वारणमुख = गजानन, गणेश।

( २१ ) दूजेा = दूसरा। मूलरज = मूलराज चालुक्यों का प्रथम राजा था जिसने अपने मामा सामंत सिंह चावडे को मारकर अन्हिल-वाडे का राज्य लिया था; यह बड़ा वीर और प्रतापी हुआ था। इसने सं० ९९८ से १०५३ तक राज्य किया। दिखणातां = दक्षिण के। दल = फौज। सुरपत = इंद्र।

( २२ ) पैठा = घुस गए। नाग = सर्प। पयाल में = पाताल मे। तर = तरु, पेड़। नागां = हाथियों की। पेागर = सूँड। नाग = सर्प।

पैठा नाग पयाल मैं, तर चंदण कर त्याग।
चालक्र चंदण लपटिया, नागाँ पेागर नाग॥ २२॥
चालकरा गज चीलमण, निज कर माँहि लियंत।
मेाताहल मय कुंभरै, ऊपर वार दियंत॥ २३॥
पेागर दाँतूसल धकै, डाल बचै नँह डंड।
कुंजर चालकरा करै, खंड खंड श्रीखंड॥ २४॥
सिंधुर गाजै सिद्धरा, आयेा किर आसाढ।
ऐतकियौ आसाढ नूँ, रद आसाढ़ेा चाढ॥ २५॥

---

चंदण से सर्प तेा डरकर भग गए और जयसिंह के हाथियें की सूँड़ें जेा चरणेां से लिपटीं सेा ही मानेां सर्प हेा गए।

( २३ ) चीलमण = सर्प की मणि। मेाताहल = मेाती। वार दियंत = न्यौछावर करके फेंक देते हैं।

( २४ ) पेागर = सूँड़। दाँतूसल = दाँत। धकै = सम्मुख। श्रीखंड = चंदन।

( २५ ) सिंधुर = हाथी। सिद्धरा = सिद्धराज के। किर = मानेां, उत्प्रेक्षावाची। ऐ = यह। तकियौ = देख लिया। रद = दाँत। आसाढ़ेा = सफेदी। चाढ = चढ़ाकर।

भावार्थ—सिद्धराज जयसिंह के हाथियें ने इस प्रकार गर्जना की कि मानेा आषाढ़ ही आ गया हेा। अब ऐसा ज्ञात हेाता है कि इन्होंने ( हाथियें ने ) अपने दाँतें की सफेदी चढ़ाकर अर्थात् अपने शरीर के काले रंग और अपनी गर्जना के साथ दाँतें की सफेदी मिलाकर—मेघें सा रूप बनाकर—आषाढ को यानी आषाढ़ के मेघें को ( विजयार्थ ) देख लिया अर्थात् मेघें से मुकाबला किया।

जेथ मलै तर मेखचा, गडै मलै तर मेख।
जलै मलै तर ईधणा, दल चालकरो देख ॥ २६ ॥
सेख सैंण आगै अरज, केरलनाथ करंत।
आवण नहँ दीजै अठै, गूजर वै बलवंत ॥ २७ ॥
भूप जड़ावै मुगट मझ, रोहण गिर उतपत्त।
निस दीपग प्रतिनिध रतन, प्रभा अपूरब भत्त ॥ २८ ॥
कूँभाथल मोताहलाँ, भरिया वप गिर भाँत।
चंद्र वरण गज रतन मैं, बंगड़ बणिया दाँत ॥ २९ ॥
अलियल सहज सुबास बस, रहै निकट दिन रात।
हिमकर बदनी हंस गत, जुवती पदमण जात ॥ ३० ॥

---

( २६ ) जेथ = जहाँ। मलै = मलय, चंदन। तर = तरु, पेड़। मेखचा = मेखठोका, भारी हथौड़ा लकड़ी का। जलै = जलता है। ईँधणा = ईँधण।

( २७ ) सेख = उस समय का कोई मुसलमान। राजा वा बादशाह। केरलनाथ = दक्षिण में केरल देश का राजा। अठै = यहाँ पर। गूजर वै = गुजरात के पति।

( २८ ) मझ = अंदर। रोहणगिर = एक पर्वत। उतपत्त = उत्पन्न हुई वस्तु, रत्न। भत्त = भाँति।

( २९ ) कुंभाथल = कुंभस्थल। मोताहलाँ = मोती। वप = वपु, शरीर। भाँत = भाँति, तरह। बंगड़ = बंध जो दाँतों पर हाथी के ( न फटने के लिये ) लगाते हैं।

( ३० ) अलियल = भौंरे। हिमकर = चंद्रमा। गत = गति, चाल। जात = जाति।

राजा सिंहल दीपरं, तोनूँ दीध त्रसींग।
खितपुड़ गूजर खंडरा, सिंध बधे तैं सींग ॥ ३१ ॥
पूतां जायाँ कवण गुण, अवगुण कवण धियाँह।
जावा न दियाँ प्रगट जग, सिंघल सिंध जियाँह ॥ ३२ ॥

( ३१ ) त्रसींग = जबरदस्त। खितपुड़ = ( क्षिति-पट ) पृथ्वीतल। सींग = बहादुरी, हौसला।

भावार्थ—यहाँ ३०वें और ३१वें दोहे का एक साथ भावार्थ लगेगा )। पद्मिनी जाति की युवती को, जिसका मुख चंद्रमा के सदृश है और चाल हंस की सी है और जिसकी स्वाभाविक शरीर की गंध से भौंरे रात-दिन उसके पास रहते हैं, सिंघल द्वीप के राजा ने तुझको जबरदस्त समझकर दिया। हे सिद्धराज, जैसे जैसे विजयार्थ तू आगे बढ़ता है वैसे वैसे गुजरात की भूमि और तेरा हौसला बढ़ता जाता है।

( ३२ ) पूतां = पुत्र। कवण = कौन। धियांह = पुत्रियां। जियांह = उन्होंने, पुत्रियों ने।

भावार्थ—संसार के अधिकांश भाग में यह रीति है कि पुत्र होने पर मनुष्य खुशी मनाते हैं और पुत्री होने पर विशेष प्रसन्न नहीं होते। इस दोहे में उसी का उल्लेख किया गया है।

पुत्रों के जन्म लेने से तो क्या गुण उत्पन्न होते हैं ( जो प्रसन्नता होती है ) और पुत्रियों के जन्म से क्या अवगुण उत्पन्न होते हैं ( जो विशेष प्रसन्न नहीं होती ) ? देखो पुत्रियों से यह बड़ा भारी लाभ हुआ। कि उन्होंने सिद्धराज जयसिंह को सिंघल में जाने नहीं दिया यह बात सब संसार जानता है। ( सिंघल के राजा ने जयसिंह को अपनी पुत्री ब्याही थी यहां उसी की तरफ इशारा है। )

भीमा धुनी पयस्वनी, गोदावरी गहीर।
ऊँनत भद्रा पूरणा, किसना निरमल नीर ॥ ३३ ॥
सिंध ताम्रपरणी प्रमुख, नदियाँ तें नरनाह।
हैवर ढोया भीम हर, गिरां उतंगां गाह ॥ ३४ ॥
देख वेद विद्या दिखण, पूज दुजांरा पाव।
दीधा दान अनेक विध, सविनय तैं सिधराव ॥ ३५ ॥
देव हरी हर दिखण में, पूजे परम प्रभात।
कीधो आछो करनरा, जनम सफल जगजीत ॥ ३६ ॥
अनमी कंध नमाविया, नाणां भरे नरेस।
जीतो तूँ जैसिंघदे, दिखण तणाँ मैा देस ॥ ३७ ॥

---

( ३३ ) भीमा = नदी का नाम। धुनी = नदी। पयस्वनी = पानी वाली ( नदी )। गहीर = गहरी। ऊनत भद्रा = तुंगभद्रा नदी दक्षिण में। किसना = कृष्णा दक्षिण की नदी।

( ३४ ) सिंध = सिंध नदी वा समुद्र। ताम्रपरणी = दक्षिण की नदी। हैवर = घोड़ा। ढोया = चलाया वा ले गया। उतंगा = ऊंचे। गाह = खूँदकर, चढ़कर। इन नदियों के नामों से वे देश संकेत से जानने चाहिएँ जो इन नदियों के पास वा बीच में हैं: यथा गोदावरी कृष्णा के बीच में आंध्र देश।

( ३५-३६ ) इन दोहों में विद्वानों को दान व सम्मान करने का वर्णन है। करनरा = कर्णराज के पुत्र ( जयसिंह ) के।

( ३७ ) अनमी = बिना नए हुए, बिना झुके हुए। नमाविया = झुके, नमे। नाणां = रुपये। भरे = दिए। दिखण तणाँ = दक्षिण के।

खेह नाँख हैवर खुराँ, अनराजाँ उतबंग ।
अलहुणपुर आयो अडर, औ सिधराव अभंग ॥ ३८ ॥
सोमेस्वर अवतार सुण, सोलं की सिधराव ।
कही छतीसी बंक कवि, जिणरै अरथ जड़ाव ॥ ३९ ॥

इति सिधराव-छतीसी सम्पूर्ण ।

---

( ३८ ) खेह = धूलि । नांख = डालकर । खुरां = घोड़े के सुम अन = अन्य । उतबंग = सिर पर । अभंग = सही सलामत, विजयी होकर ।

( ३९ ) सोमेश्वर = महादेव, शिव ।

इति सिधराव छतीसी टीका सम्पूर्ण ।

## ( ७ ) अथ वचन विवेक पच्चीसी

ऊतरती बातां करै, औरांरी अणबंध।
निज मुख पांणी ऊतरै, इखै नँह मद अंध ॥ १ ॥
बैरीरी हो बत्तडी, करै नहीं कुलवंत।
बात बुरी मिल मिंत्ररी, कुल बाहिरा करंत ॥ २ ॥
काचड़गारां ऊपरा, राम तणो है रीस।
काचड़गारा कूड़चा, बगड़ै बिसवाबीस ॥ ३ ॥
जग में नर हलका जिकै, बोलै हलका बोल।
आप तणो मुख आपरो, मूरख करदे मोल ॥ ४ ॥
पर निंदा आठूँ पहर, चाटै बिषरी चाठ।
क्यों नँह तू प्राणी करै, पंच रतनरो पाठ ॥ ५ ॥

( १ ) ऊतरती = खोटी। औरांरी = दूसरों की। अणबंध = बेशुमार। पांणी ऊतरै = लजाना, शर्मिंदा होना। इखै = देखना। इखै—पाठा०—इकै।

( २ ) बत्तडी = बात। मिंत्ररी = मित्र की। कुलबाहिरा = नीच कुलवाले।

( ३ ) काचड़ = बुराई। गारां = वाला। काचड़गारा = बुराई करनेवाला। रीस = क्रोध। कूड़चा = बुराई में। बगड़ै = बिगड़ते हैं। बिसवाबीस = निश्चय ही।

( ४ ) हलका = नीच। आपरो = अपना। मोल = मूल्य, क़ीमत।

( ५ ) आठूँ पहर = अष्ट पहर, रात-दिन। बिषरी = विष की, जहर की। चाठ = खाद्य वस्तु।

पैंड पैंड ज्याँरा पिसण, त्याँरा कड़वा बैंण।
जग जाँनूं देखै जलै, नहिं थाटा है नैंण॥ ६ ॥
जाय बंक जलजात ज्यों, संजुत संत असंत।
बड़वानल कड़वा वचन, जल भलपण जाणंत॥ ७ ॥
चँदणा लपटे मिणधरण, रीझै साँभल राग।
पिण मुख माँझल जहर है, निंदवियो जग नाग॥ ८ ॥
बाँका बिष फल नीपजै, ज्यों बिष तररी डाल।
यूँ दुरजणरी जीभड़ी, रैंकारा कै गाल॥ ९ ॥
जीकारा अमृत ज्युँ ही, भावै जगनूं भाल।
है रैंकारा आक पय, गरल बराबर गाल॥ १० ॥

( ६ ) पैंड पैंड = पग पग पर। पिसण = दुष्ट, शत्रु। त्यांरां = उनके। जाँनूं = जिनको। थाटा = प्रसन्न।

( ७ ) जलजात = कमल; जल और उसमें उत्पन्न वस्तु।

( ८ ) मिण = मणि। मिणधरण = सर्प। रीझै = प्रसन्न होता है। साँभल = सुनकर। राग = गायन। पिण = तो भी। माँझल = में, अंदर। निंदवियो = निंदा की।

( ९ ) नीपजै = पैदा होते हैं। तररी = वृक्ष की। डाल = टहनी। यूँ = इस तरह। जीभड़ी = जिह्वा में। रैंकारो = ओछे वचन, नीच वचन। कै = अथवा। गाल = गाली गलौज।

( १० ) जीकारो = 'जी' शब्द लगाकर बोलना; जैसे—रामजी, रतनूंजी आदि। भावै = अच्छा लगता है। जगनूं = संसार को। भाल = देखो। आक = आकड़ा ( वृक्ष-विशेष )। पय = दूध। गरल = जहर।

टीकारो मालक तिको, जीकारो मुख जास।
उणासूँ एँकारो किसूँ, मुख रैकारो हास॥ ११॥
सजन बाँधै पाळ सिर, सीसा छकियाँ गाळ।
दुरजण फोड़ै गाळ दे, प्रीत सरोवर पाळ॥ १२॥
गाळ न ऊठै गूमड़ा, ऊठै झाळ अकत्थ।
जिणनूँ सज्जन वैण जळ, सांत करण समरत्थ॥ १३॥

### सोरठा

विष मुख जास वसंत, मीठा बोलां हँस मरै।
उरग तणा कर अंत, मोर प्रकासै एह मत॥ १४॥

( ११ ) टीकारो = टीकाई, प्रधान, सर्वोच्च। मालक = मालिक, पति। तिको = उसको, वह। जास = जिसके। उणासूं = उससे। एँकारो = एँकार, मनोमालिन्य। रैकारो = ओछे वचन; जैसे—रतन्या, भगवान्या आदि। हास = हँसी से।

( १२ ) पाळ = बंध। छकियां = खूब, यथेष्ट। गाळ = गला कर, तपाकर भरना।

( १३ ) ऊठै = उत्पन्न होना। गूमड़ा = फोड़ा। झाळ = ज्वालाग्नि, जलन। अकत्थ = अकथनीय, बहुत भारी। जिणनूं = जिसके लिये। वैण = वचन। सांत = शांत।

( १४ ) जास = जिसके। बोलां = वचनों से। हँस मरै = हँसकर मर जाते हैं वा लज्जित हो जाते हैं। उरग = सर्प। तणो = का। एह = यह। मत = बात, उदाहरण।

गाल लुगायाँ गावही, नर मुख उचत न गाल।
अमल गाल मनवार कर, का सुभ बचन उगाल ॥ १५ ॥
आद अंत दुय अंक, नाँम जिका बिन नीड रो।
बात भली आ बंक, राख दूर निज रसण सूँ ॥ १६ ॥
करण घाव पर कालजै, जीभ प्रनख जमदाढ़।
जाझी है ता जीभ सूँ, कड़वो बैंण न काढ़ ॥ १७ ॥
जीकारो अनमुख जुड़ै, आ जगनूँ अभिलाख।
जीकारो दो जगतनूँ, रैकारो मत राख ॥ १८ ॥
ताल बाल दीजै नहर, मनखाँ फूलाँ माल।
बलदाँ दीजै नाल घी, पगा नँह दीजै गाल ॥ १९ ॥

( १५ ) लुगायां = स्त्रियां। उचत = उचित: ठीक। अमल = अफीम। गाल = गलाकर। मनवार = निहोरा, खातिरी। उगाल = निकाल।

( १६ ) नीड = घोंसला। घोंसले को खगालय भी कहते हैं जिसके आदि अंत के अक्षर जाने से 'गाल' रह जाता है। रसण = रसना, जीभ।

( १७ ) पर = दूसरों के। कालजै = हृदय पर। प्रनख = प्रत्यक्ष। जमदाढ़ = यमदंष्ट्रा, गहरा घाव करनेवाली कालरूप कटारी। जाझी = अधिक। म = मत, नहीं। काढ़ = निकाल।

( १८ ) अनमुख = अन्यमुख, दूसरों के मुंह से। जुड़ै = प्रयोग में आवे, बोलने में आवे। अभिलाख = इच्छा।

( १९ ) ताल = तालाब। बाल दीजै = मोड़ दीजिए। मानखां = मनुष्यों को। बलदां = बैलों को। नाल = बांस की नली से। घी = घृत।

राम नाम चंगो रतन, सो मुनिराजाँ माल़।
पिल बाँधी बाधे गलै गलै, म बाँधो गाल़॥ २०॥
राखो आगै रसमझै, राघव नाम रसाल़।
मुख मांझल़ आँणा मती, गिणँ अवक ज्यूँ गाल़॥ २१॥
जीकारो बतल़ाव जग, जस जग हूँत न जाय।
जीहा साबल़ चाल तू, काबल़ बाल़ कहाय॥ २२॥
पड़ै खरच नांणा प्रगट, जीमण मीठै जाय।
बाँका मीठै बोलणाँ, नांणा खरच न होय॥ २३॥
पंखी बोलै मोर की, मीठा जग मोहंत।
जन मीठा बोला जिकै, क्यूँ जग बस न करंत॥ २४॥
पारख कीधी पंडिताँ, सरब मिलै संताह।
ज्याँरै जीभ भलाइयाँ, त्याँरै भाग भलाह॥ २५॥

( २० ) पिल = जबरदस्ती। बाधे = सम्पूर्ण, तमाम। म = मत, नहीं।

( २१ ) मांझल़ = मध्य, बीच में। आणा = लाओ। मती = मत, नहीं। अवक = अकथ्य।

( २२ ) बतल़ाव = बोलो। जीहा = जीभ से। साबल़ = ठीक ठीक। काबल = बुरे वचन, गाली आदि। बाल़ = जलाओ। कहाय = कहने को।

( २३ ) नांणा = रुपये। जीमण = ज्योनार, दावत।

( २४ ) मीठा बोला = मीठे बोलनेवाले। जिकै = जो।

( २५ ) पारख = परीक्षा। ज्याँरै = जिनके। त्याँरै = उनके। भाग = भाग्य, तकदीर।

जठै तठै इण जगत में, जीकारो श्रीकार।
बालो जमरा बायकाँ, तूकारो तनसार॥ २६॥
राणी जाया राजव्याँ, सहजाँहूँ बलिहार।
तूकारो तारीफियाँ, बरसो मीना धार॥ २७॥
कुवचन मुख कहणो नहीं, सुवचन कहणो सुद्ध।
बचन विवेक पचीसिका, इम आखै अविरुद्ध॥ २८॥

इति वचन विवेक पच्चीसी सपूर्ण।

---

( २६ ) जठै = जहां। तठै = वहां। श्रीकार = श्रेष्ठ। बालो = प्यारा। बायकां = वचनों में। तनसार = तन को छेदनेवाला, "तूकारो" शब्द का विशेषण है। तनसार—पाठां० —ततसार।

( २७ ) जाया = पैदा किया। राजव्यां = राजपुरुषां को। सहजांहूँ = स्वभाव को।

( २८ ) इम = इस प्रकार। आखै = कहते हैं।

इति वचनविवेक-पचीसी टीका सपूर्ण।

# ( ८ ) अथ कृपण-पच्चीसी

माहव सूम मिलाव मत, ऐड़ा घरां निसाव।
के टल्लर फल्लर करै, पावै कल्लर राव॥ १ ॥
अदतारां वर ऊख रस, नैंह कारण मिसटाण।
मन कारण मिस टांणरा, जठै भूख रस जाण॥ २ ॥
ऊग गिरी धर ऊपरै, गल खांडामय आब।
तूम्बो मीठस होय तो, सूबो होय सबाब॥ ३ ॥

( १ ) माहव = माधव, हे कृपण! ऐड़ा = ऐसे। के = कई प्रकार से। टल्लर फल्लर करै = टालमटोल करते हैं। कल्लर = खट्टी और पतली। राव = राबड़ी: एक प्रकार का पेय पदार्थ जो बाजरा, गेहूं आदि से बनाया जाता है। पाठां० ( M* ) माहव सूम मिलाव मत, आछा घरां असाव। ( S† ) माहव सूम मिलाव मत, आयां नर असनाव। पावै ..... राव — पाठां० — पावै कल्लर राह।

( २ ) अदतारां = सूमों के। ऊख = ईख, सांठा। जठै = जहाँ। भूख रस जाण = भूख भी रस के समान है। अदतारा — पाठां० — (S) अदतारो। मन — पाठां० — ( S ) इण। रस — पाठां० — ( S ) सो।

( ३ ) गल = इला, पृथ्वी। खांडामय = शर्करामय। आब = पानी। सबाब = पुण्य। ऊग ..... ऊपरै — पाठां० — ( M ) उगा गरां धर ऊपरा, ( S ) उर धरणी वर ऊपरां। गल ... आब — पाठां० — ( M )

*(M) ऐसा चिह्न है वहां ना० मुरारिदानजी की पुस्तक का पा० है।
†( S ) यह चिह्न जहां है वहाँ सीतारामजी की पुस्तक का पाठ है।

अदता टाणाँ ऊपरै, नाणाँ खरचै नाँहि ।
हाथ घसै निरधन हुवाँ, माँखी ज्यों जग माँहि ॥ ४ ॥
सावण मास सुहावणो, लागै झड जल लूँम ।
उण दिन ही आसव तणी, सोरभ नेह ले सूँम ॥ ५ ॥
हुवै मुवाँ बिन मुकत नँह, भै बिन हुवै प्रीति ।
सुधा पियाँ बिन अमरपद, हूँ न दियाँ बिन क्रीत ॥ ६ ॥
भूपत भणकाराह, जसरा जिके न जा लिया ।
ताँ ताँ तणकाराह, गाणाँ क्योँ गरबीजिया ॥ ७ ॥

तल खांडां महिताव, (M) तठ खाड़ा मही ताव। कुम्बां...तो—पाठां०—(M) न था मोट महोत्स तो, (M) सूचा मोठम होय तो।

(४) टाणां—विवाहादि उत्सव। नाणां=रुपया पैसा। घसै=घिसते हैं, मलते हैं। हाथ...हुवां—पाठा०—(M) हाथ पसारे धन हुवे।

(५) लागै झड जल लूँम=खूब वर्षा होती है। आसव=बढ़िया शराब। सोरभ=सुगंधि। लागै...लूँम—पाठां०—(M) लागे कड़जा लूम। सोरभ...सूँम—पाठां०—(M) सुरभ न लाए सूँव।

(६) मुवां बिन=मरे बिना। मुकत=मुक्ति। भै=भय, डर। क्रीत=कीर्ति। मुवां—पाठां०—(M) मुणीं। हूँ—पाठां०—(M) केण।

(७) भणकाराह=भणकारे, कान में शब्द पड़ना। जसरा=यश के। जिके=जो। जां=जिन्होंने। तांतां तणकाराह=तांत के वाद्ययन्त्र, सारंगी आदि। गाणां=गायन। गर्बीजिया=गर्व करते हैं।

भावार्थ—जिन राजाओं ने यश के शब्द नहीं सुने, उनका सारंगी आदि वाद्ययन्त्रों से गर्व करना वृथा है क्योंकि उनका यश कोई भी नहीं

ऊतर मीठा आम्बरां, नीपण खारै नाव।
सीलौ ही बन जालवै, उत्तर हंदा बाव॥ ८॥
कल में बुधवंता करै, मांघड विमल शरीर।
पांण न मूढ़ पखालही, नदी वहंतै नीर॥ ९॥
जोईजै निज घर दियां पर घर दियां निकाज।
आपस में इम ऊचरै, सब कूं जम सज साज॥ १०॥
उत्तर नूं खाली कहै, उर ज्यां बड़ा अंधेर।
उत्तर दिसा सुमेर है, उत्तर माह कुबेर॥ ११॥
जम ठहरै तो जीभ में, कूंता हूंत विधि काथ।
मँहँरे तो मृगमांग में, पैठा बान पसीध॥ १२॥

करता है। जसरा...जिया। पाठां०—(M) जसरा जिके न जाणिया। (S) जसरा जिके न जांणिया। गाणां.....गरजांजिया—पाठां०—(M) गीणउ कू गजीया, (S) गीणन कूँ गरजांजिया।

( ८ ) आम्बरां = अम्बरों में। नीपण = निपुण चतुर। खारै = खारा। नाव--स्वाद, जायका। सीलौ ही = शीतल ही। हंदा = का। बाव = वायु। नीपण = पाठां०—(S) नीपिण।

( ९ ) कल = संसार। मांघड = स्नान करके। पांण = पवित्र हाथ। पखालही = धोते हैं। कल = पाठां०—(M) कुल।

( १० ) जोईजै = जलाना चाहिए, देखना चाहिए। निकाज = व्यर्थ। जोईजै—पाठां०—(S) जो दूजे। इम—पाठां०—(S) इम। सब...साज—पाठां०—(S) सूँ मां कुजर समाज।

( ११ ) ज्यां = जिनके। उत्तर...कहै—पाठां०—(M) उत्तर नेठ लखि यों कहै, (S) उत्तर उखोली कहै। ज्यां—पाठां०—(S) ज्यें।

( १२ ) ठहरै—ठहरता है। तो = तेरे। मँहँरे = मेरे। मृग-

अंगण मंगण आवियाँ, उत्तर बेगा अप्प।
एह महा ध्रम आतमा, ए तीरथ ए तप्प ॥ १३ ॥
दरब किसी ओपम दियाँ, तो सूँ है मन काय।
तो मारीखो तूहिज तू, अवर न दूजो कोय ॥ १४ ॥
सोना हंदी लंक सुण, जग तरसै सब जीव।
जगत पंथ कोय न गिणै, गत थारी हयग्रीव ॥ १५ ॥
करूँ अरज कमलालया, त्यागाँ बार न तुज्ज।
जिण दिन ओ जग छाँडस्याँ, उण दिन तोसूँ कज्ज॥ १६ ॥

सींग में—प्राचीन काल में शिकार करने में धनुष की कोटि से मृगों के सींगों को उलझाकर उनको जीता पकड़ लेते थे। कृपण को यश मिलना ऐसा ही कठिन है।

( १३ ) अंगण = आंगन, घर में। मंगण = भिखारी। बेगो = जल्दी। अप्प = दे।

( १४ ) दरब = द्रव्य। ओपम = उपमा। मारीखो = समान, बराबर। अवर = अन्य, और। दरब—पाठां०—(S) देम। है—पाठां०—(S) के।

( १५ ) जगत पंथ = संसार का मार्ग, जन्म मृत्यु। गत = गति। थारी = तुम्हारी। हयग्रीव = हे ईश्वर। जगत......गिणै—पाठां०—(S) जग पत कोय जाके नहीं।

( १६ ) कमलालया = लक्ष्मी। बार = अभी। ओ = यह। छाँडस्यां = छोड़ेंगे। उण = उस। करूँ—पाठां०—(S) कंस। त्यागां... तुज्ज पाठां० —(M) मांगां मार मनज्ज, (S) मांझी मार मचज्ज। छांडस्यां—पाठां०—(M) छेड़यां, (S) चंडसी।

रक घणौ जल गूदड़ा, लै तन सूँ लपटाय ।
अत्थ वत्थ भर काढवै, मंदिर जलतो माय ॥ १७ ॥
मूल वरण उगणीसमो, इक बीस मय आन ।
साधहु विध नुभ जतन सो, विस्नुक भो भगवान ॥ १८ ॥
रहो बीधवे रामरस, अनरथ घणा अत्तंत ।
याहिज ह धस आतमा, ग नीरथ ग नंत ॥ १९ ॥
कचियण रमण कपाणारा, साजौ हुवै न भाव
बीह न इसी बलायरा, सूं भा कठण सुभाव ॥ २० ॥

( १७ ) गरक = गर्क, डूबा हुआ । घणौ = बहुत । गूदड़ा = वस्त्र । अत्थ = धन । वत्थ भर = बाथ भरके, दोनों हाथों से पकड़कर । काढवै = निकालते हैं । गरक...गूदड़ा—पाठां०—(२) गरक घणौ जल गूदड़ा । अत्थ...काढवै पाठां०—(१) अत्थ वत्थ भरके दिया, (२) अत्थ... भरक दीया ।

( १८ ) मूल...उगणीसमो = वर्णों में वर्ण ... । इक ... आन = एक बीसवाँ वर्ण "न" सहित ... अर्थात धन का । साधहु = साधना करो । विध = विधि सहित । भो = भव, महादेव । इक...आन -- पाठ० —(२) इक नाग ... आन । साधहु... ... भगवान । साधहु विध नुभ जट मसु, विरण, ... ... ।

( १९ ) धावे = अवलंब करके । रामरस = भक्ति; नमक । ( यहां श्लेष है । )

( २० ) रमण = ... । कपाणारा = तलवार का । साजौ = ठीक, दुरुस्त । बीह = डर । इसी = ऐसी । बलायरा = आफत का, आपत्ति का । कठण = कठिन । बलायरा —(पाठ०)—(२) तलवार का ।

पापी पाप न कीजिए, न्यारा रहिए आप।
करणी आपो आपरी, कुण बेटा कुण बाप ॥ २१ ॥
रीझै विषधर राग सूँ, किया न जिणरै कान।
कान किया क्यों कपणरै, सुणै न क्यों ही ज्ञान ॥ २२ ॥
जवन मृतक तन कपण धन, अनकण कीडी आँण।
धरती में ऊँडो धरै, जाण भलो निज जाण ॥ २३ ॥
कां हूं तूँबा बाँधियाँ, सूँमाँ हंके सत्थ।
नर डूबै बहती नदी, सायर तरण समत्थ ॥ २४ ॥
दान घणो उत्तर दिये, हूं ते बित मत हार।
मुँहडो लै उण मिनखरो, भोभर भीतर भार ॥ २५ ॥

( २१ ) न्यारा = अलग। करणी = कर्म। कुण = कौन। पापी—पाठां०—(S) पीपा।

( २२ ) विषधर = सर्प। क्योंही = कुछ ही। रीझै...सूँ—पाठां० —(S) राके विषधर राग सूँ। क्यों—पाठां०—(S) सूँ। ज्ञान—पाठां०—(S) दान।

(२३) जवन = यवन, मुसलमान। अन = अन्न। ऊंडो = गहरा। कृपण—पाठां०—(S) रपण। ऊँडो—पाठां०—(S) ऊँचो।

( २४ ) सूँमा = कंजूसों के। हंके = चलना। सत्थ = साथ। समत्थ = बलवान्। हूं—पाठां०—(M) कहूँ, (S) कह। हंके—पाठां०—( M ) हुवै। सत्थ—पाठां०—( M ) समत्थ। डूबे—पाठां० (M) होवै।

( २५ ) बित = वित्त, धन। मुँहडो = मुख। मिनखरो = मनुष्य का। भोभर = भोभल, चूल्हे की गरम मिट्टी। भार = भाड़। तं—

लुल डालो तर लोभगे, झूलै रहिया झूल ।
देणो दान कबूल नेंह, कपणां मरण कबूल ॥ २६ ॥
मारां अदतारां मही, आछो पडदो पोस ।
मुँह न दिखावै मंगणा, देणो उत्तर दोस ॥ २७ ॥
देणो उत्तर कविजणा, सुबरण अरथ सनेह ।
सुकवि सँम सम दाखिए, नहीं तफावज रेह ॥ २८ ॥

पाठां०—(M) नेा । बिन—पाठां०—(M) बिन । मुहडो ले उण—पाठां०—(M) मुखडी लै उण । मोभर—पाठां०—(M) मोवर ।

भावार्थ—धन के होते हुए भी अपने सत्य को छोड़कर जो मनुष्य दान में खाली उत्तर ही देता है उस मनुष्य का मुख भाड़ की भोभल मे देना चाहिए ।

( २६ ) लुल = नमी हुई, झुकी हुई । डालो = टहनी । तर = तरु, वृक्ष । लुल...लोभरे—पाठां०—(M) लल डाली कर लोभरे, (S) लला डला कर लो भले । झूलै...झूल—पाठां०—(S) झूलै रहिया झूल ।

( २७ ) सारां = सब । आछो = अच्छा ।

( २८ ) सुबरण = स्वर्ण, अच्छे वर्ण । अरथ = लिये । दाखिए—कहिए । तफावज = फर्क । रेह = रेखा । देणो...कविजणां—पाठां०—(S) उत्तर दिये कवियणां । सुकवि...दाखिये—पाठां०—(M) सुकवि सूँमां दाखिया, (S) सुकवि सूँब सम दाखिया ।

भावार्थ—श्रेष्ठ कवि और सूँम में रेखा मात्र भी फर्क नहीं है; क्योंकि सुकवि तो श्रेष्ठ वर्णों की प्रीति के कारण कवियों को प्रश्न का उत्तर देता है और कंजूस धन की प्रीति के कारण खाली उत्तर देता है ।

सूधै मन बाँका सदा, अरज करै अविरुद्ध।
वाँरै लइबा जाचणों, देह दई मा बुद्ध ॥ २९ ॥

इति कृपण पच्चीसी समाप्त ।

---

( २९ ) बांको = कविराजा बांकीदासजी । वांरै = उनके, कंजूसों के । लइबा = लेने के लिये । दई = हे ईश्वर । मन—पाठां०—(M) मत । वांरै . जाचणों—पाठां०—(M) वार लई भाजाँचणो, (S) वार लई मा जाचणो । मा—पाठां०—(M) मो ।

इति कृपण-पच्चीसी टीका सम्पूर्ण ।

# ( ६ ) अथ हमरोट-छत्तीसी

दोहा

सहर वसायो सूँमरै, ऊमर कोट कहाय।
कहजे ऊमर कोट तै सोढाँ लीधो आय॥ १॥
ऊमर हूंदो दूसरो, हूंतो नाम हमीर।
तै हमरोट कहावतो, सुषकर नीर समीर॥ २॥
सेरसाह दिल्ली तषत, बैठो बल निज बाह।
उमरांणै जद आवियो, सरणो हमाऊ साह॥ ३॥
जठै अकब्बर जनमियो, जांणै दुहुँ वै राह।
हुवो हिंद अकलीम मैं, साहिब साहांसाह॥ ४॥

( १ ) बसायो = आबाद किया। सूँमरै = एक जाति का नाम है जो मुसलमान हो गई। कोट = किला, शहरपनाह। कहजे = कहा जाता है। तै = जिससे। सोढा = पंवार क्षत्रियों की एक शाखा। लीधो = ले लिया। आय = आकर।

( २ ) हूंदो = का। हूंतो = था। तै = जिससे। हमरोट = हमीरकोट का अपभ्रंश। सुषकर = आराम देनेवाले। नीर समीर = जल-वायु।

( ३ ) बल निज बाह = अपनी भुजाओं के बल से। उमरांणै = ऊमरकोट। सरणो = शरणागत। हमाऊ = हुमायूं।

( ४ ) जठै = जहां, ऊमरकोट में। जनमियो = पैदा हुआ। दुहुँ वै राह = हिंदू मुसलमान। अकलीम = बादशाहत। साहिब = मालिक। साहांसाह = बादशाहों के बादशाह।

सोढा ऊमरकोटराँ, सिर कटियाँ समसेर।
वाहे हणिया वैरहर, बाँका भारथ बेर॥ ५ ॥
एक एक सूँ आगला, राँणाँ ऊमरकोट।
प्रगट हुवा परमार वै, माँणीगर मनमोट॥ ६ ॥
जस दस दिस ओपीजिकाँ, लोपी नहँ कुल-लाज।
दिया हजारां हेक दिन, धाट तणाँ धजराज॥ ७ ॥
राँणाँ ऊमरकोटरा, गया जमारां जीत।
ज्याँरा मंगल धवल में, गवरीजै जसगीत॥ ८ ॥
लोक जठै रंको नहीं, नँह संको पर थाट।
सोढाँ जस डंको घुरै, पाधर बंको धाट॥ ९ ॥

( ५ ) ऊमरकोटरा = ऊमरकोट के। सिर = मस्तक। कटियाँ = कटे हुए। समसेर = तलवार। वाहे = चलाकर। हणिया = मारे। वैरहर = शत्रुता रखनेवालों को। बांका = टेढ़े या कवि बाँकीदास कहता है। भारथ = युद्ध। वेर = समय।

( ६ ) आगला = अग्रगण्य। प्रगट = प्रकट। हुवा = हुए। परमार = पँवार-प्रमार क्षत्रियों में एक शाखा है, सोढे उनकी उपशाखा हैं। वै = वे। मांणीगर = वैभव को भोगनेवाले दानी। मनमोट = बड़े मन वाले।

( ७ ) जस = सुयश। दस दिस = दसों दिशाएँ। ओपी = शोभायमान हुई। तणां = के। धजराज = घोड़े।

( ८ ) ज्याँरा = जिनके। मंगल = मांगलिक गान। धवल में = महलों में। गवरीजै = गाए जाते हैं। जसगीत = सुयश के गीत।

( ९ ) रंको = कोई भी दरिद्र नहीं है। संको = सकुचाना, कुढ़ना।

घर घर मैं धीणा घणा, घर घर घूमै माट ।
राग रंग रलियावणा, धरपुड़ माँझल धाट ॥ १० ॥
की ईरा गिराक की, किसूँ कच मकराण ।
पेत तुरंगा धाट जिम, बाका धाट बखाण ॥ ११ ॥
हंस जंही हालंदिया, धाटीचिया तियांह ।
कनक लता कठियांणियां, जोड़ै नैहै जियांह ॥ १२ ॥
धन उमराणा धाटधर, पदमणियां विण पार ।
मह नारी सांकातरी, धरती सिंध धिकार ॥ १३ ॥

पर थाट==दूसरे की संपत्ति को देखकर । डंको घुरे—नकारे बजते हैं । पाधर बंका धाट—धाट का जिला जमीन पर बड़ा जबरा है ।

( १० ) धीणा—गाय, भैंस, बकरी, भेड़ । घूमै माट—मही बिलोया जाता है । रलियावणो—सुहावना । धरपुड़=पृथ्वी के खंड । माझल=में । धाट=ऊमरकोट का जिला ।

( ११ ) की—क्या । ईरां=ईरान । किसूँ=क्या । पेत तुरगा=घोड़ों के पैदा होने की जगह । धाट जिम—ऊमरकोट का जिला जैसा । बाका=कवि बांकीदासजी कहते हैं । धाट=ऊमरकोट का जिला ही है ।

( १२ ) जंही=जैसी । हालंदियां=चलनेवाली । धाटीचियां धाट की । तियांह=स्त्रियें । कनक=सुवर्ण । लता=बेल । कठियांणियां=काठियावाड़ की । जोड़ै=बराबर । जियांह=जिनके ।

( १३ ) धन=धन्य । उमराणां=ऊमरकोट । धाटधर—धाट जिले की पृथ्वी । पदमणियां—पद्मिनी स्त्रियां । विण पार=अपार ।

पूरो सुष हमरोट पुर, लोक न जाँणै डंड।
छोलाँ जल लांबो छिलै, बड़ लागा ब्रहमंड ॥ १४ ॥
ज्याँ दीहाँ सिवराज सुत, राँणो रायाँमाल।
ज्याँ दीहाँ जोवण जिसो उमराँणो जगढाल ॥ १५ ॥
राव कलारी वार में, ईडर नगर अनूप।
वारै रायाँमालरै, उमराँणा इण रूप ॥ १६ ॥
धाट सुरंगा गोरियाँ, आद कहवत एह।
पदमणियाँ हमरोट हूं, राष म संसो रेह ॥ १७ ॥
लागाँ कुसुम सरीस वप, ज्यांरै पड़ै परोट।
हद नाजक हिरणछियाँ, है मांझल हमरोट ॥ १८ ॥

---

( १४ ) हमरोट = हमीरकोट, ऊमरकोट। लांबो = ऊमरकोट के तालाब का नाम है। बड़ = वट या बरगद का वृक्ष।

( १५ ) ज्यां दीहां = जिन दिनों में। रायांमाल = रायमल। जोवण जिसो = देखने जैसा। उमरांणो = ऊमरकोट। जगढाल = जगत की रक्षा करनेवाला।

( १६ ) राव कलारी = रावजी कलाजी के। वार में = समय में। वारै रायांमालरै = रायमल के समय में।

( १७ ) सुरंगा = सुशोभित। गोरियां = स्त्रियां। से। आद = प्राचीन। कहवत = कहावत। पदमणियां हमरोट हूं = ऊमरकोट में पद्मिनियां होती हैं। राष म संसो रेह = इसमें रेखामात्र भी संशय-भ्रम मत रख।

( १८ ) लागां = लगने से। कुसुम सरीस = सिरस का पुष्प। वप = सरीर। ज्यारै = जिनके। पड़ै परोट = लोही निकलकर खरूँट जम जाता है। हद नाजक = नाजुकता में पूर्ण। हिरणछियां = मृग-नयनियां। मांझल = में। हमरोट = ऊमरकोट।

एकै दिट्ठाँ दिट्ठ मह, महला चंपक माल।
कर सूँ लीधी तोड़ किण, रूप रूँख इक डाल ॥ १९ ॥
एकै पदमण वासतै, सांवल गयो रतन्न।
ऊमरकोट न आविया, मनो कियो को मन्न ॥ २० ॥
लोयण चंचल श्रवण लग, लाँबा वेणी डंड।
महकै सहज सुवास वप, फिर लागो आपड ॥ २१ ॥
आंपड़ियाँ अणियालियाँ, काजल रेख कियांह।
बीभलियाँ भावंदिया, लाज सनेह लियांह ॥ २२ ॥
झपा पंजरीटा मृगाँ, मंवर हलक मराह
जैतवार उरोंग नयण सरोरुहा मृगराँह ॥ २३ ॥

( १९ ) एकै = एक। दिट्ठां = देखने में। दिट्ठ = देखा। मह = मध्य। महलां = स्त्रियां। कर सूँ = हाथ से। लीधी = लिया। किण = किसने। रूप रूँख = रूप के वृक्ष की। इक डाल = एक डाल।

( २० ) एकै = एक। पदमण वासतै = पद्मिनी के लिये। सांवल = लंका, सिंघल द्वीप में। गयो = गया। रतन्न = चित्तौड़ का महाराणा रतनसिंह। मनो = विचार। को = भी। मन = अपने मन में।

( २१ ) लोयण = नेत्र। श्रवण लग = कानों तक। लांबा = लंबे। वेणी डंड = चोटी-नागिन। सहज = स्वाभाविक। सुवास = सुगन्धि। वप = शरीर। फिर = मानो। लागा = लगाया। आपंड = चंदन।

( २२ ) आंपड़िया = आंखें, नेत्र। अणियालियां = तीखी चुभन वाली। बीभलिया = विह्वलें, रसिक को। भावंदिया = अच्छी लगने-वाली। लाज = लज्जा। सनेह = स्नेह, प्रीति।

( २३ ) झपा = मछलियां। पंजरीटा = खंजन पक्षी, कोड़िया, एक जाति की चिड़िया। मृगां = हरिणों को। मंवर हलक मराह =

महलाँ पूनम चंद मुष, आठम चंद ललाट ।
केहर कड़ ज्यूँ पीण कड़, भ्रूँ भ्रमरावल घाट ॥ २४ ॥
कोमल राता पातला, अधर जिकाँरा ईष ।
अभिलाषै पीवण अमर, सुधा जाम दे सीष ॥ २५ ॥
दाँत दमंकै अहर दुत, जाँण चमंकै बीज ।
ज्याँरी धुनि मधुरी सुणे, रहै तपोधन रीज ॥ २६ ॥
स्वच्छ कपोल महेलियाँ, मझ छबि नकूँ मिणाँह ।
पात समर सोनी किया, जर जाफरी तणाँह ॥ २७ ॥

कामदेव के बाणों से घायल हुए हुओं को। जैतवार = जीतनेवाले। ज्यारा = जिनके। नयण = नेत्र। सरोरुहां = कमलों को। सुथरांह = अच्छे।

( २४ ) महला = स्त्रियां। पूनमचंद = पूर्णिमा का चंद्रमा। मुष = मुँह। आठम = अष्टमी। चंद = चंद्रमा। केहर = सिंह, शेर। कड = कटि, कमर। पीण = क्षीण, पतली। भ्रूँ = भँवारे। भ्रमरावल = भँवरों की पंक्ति की। घाट = तरह।

( २५ ) राता = लाल, रक्त। पातला = पतले। अधर = होंठ। जिकांरा = जिनके। ईष = देखकर। अभिलाषै = इच्छा को। पीवण = पीने के लिये। अमर = देवता। सुधा = अमृत। जाम = प्याला। दे सीष = अलग हटाकर।

( २६ ) अहर = दिन। दुत = कांति। ज्यांरी = जिनकी। तपोधन = महात्मा। रीझ = प्रसन्न।

( २७ ) कपोल = गाल। महेलियां = स्त्रियों के। मझ छवि = छवि में। नकूं मिणांह = कुछ भी कमी नहीं है। पात समर सोनी किया = मानों कामदेव-रूपी सुनार ( स्वर्णकार ) ने पत्ते बनाए हैं। जर जाफरी = स्वर्ण और केसर। तणांह = के।

अंग अंग मझ्झ झफणाँ, जोबन आठों जाम।
त्याँ हंदी तसबीरगाँ, कलम हुवै नेह काम ॥ २८ ॥
सह आभरणाँ सोभती, आवल फूल नियाह।
जाँणै फूलाँ भार जुत, हाटक बेलड़ियाह ॥ २९ ॥
चारि पूनम चंद से, काढी कामणियाह।
काय सुघर अरु काय घर, देखा दामणियाह ॥ ३० ॥
घूँघट पोलंदी नहा, बोलंदी पिक बैण।
गजगत जावै गोरियाँ, लाँबै सर जल लैण ॥ ३१ ॥

( २८ ) मझ्झ = में। झफणाँ = झलके। जोबन = यौवन। आठों जाम = आठ प्रहर, दिन रात। त्यांहंदी = तिनकी।

( २९ ) सह आभरणां = गहनों के सहित। आवल फूल = बहुत से, झुंड के झुंड। नियांह = स्त्रियां। फूलां = पुष्पों के। भार जुत = बोझ संयुक्त। हाटक = सोने की, स्वर्ण की। बेलड़ियांह = बेल, बेलि, लता।

( ३० ) चीरि पूनमचंद = पूर्णिमा के चंद्रमा को चीरकर, य-हुन। काढी = निकाली। कामणियां = स्त्रियों को। काय सुघर अरु काय घर, कै सौंथल कै धाट घर = क्या भागों में ... क्या ... या तो सिंघल द्वीप लंका में या धाट के जल में। देखी दामणि-याह = बिजली की सी चमक दमकवाली स्त्रियां देखीं।

※ पाठांतर —"कै सौथल कै धाट धर।"

( ३१ ) पोलंदी नहीं = अलग नहीं हटाती। बोलंदी = बोलती है। पिक बैण = कोकिल के से मधुर वचन। गज गत = हाथी की सी चाल से। लांबै सर = लांबा नामक तालाब पर। जल लैण = पानी भरने को।

दे घरगी तज देहली, पणघट माँमाँ पाय।
वाजै नूपर पार बिण, सोर सरोवर जाय ॥ ३२ ॥
सरवर लाँबै संचरै, पणघट पदमणियाँह।
किर गिरवाण कँवारियाँ, बप सोभा बणियाँह ॥ ३३ ॥
ज्याँरा द्रग कच जीतिया, सोह पंकज सीवाल।
पड़ती लहराँ मिस पगाँ, त्याँ हंदाँ ओनाल ॥ ३४ ॥
कमल जिसा सुकुमार कर, चूड़ा रँगिया चोल।
लाँबै जल लहराँ कलस, भरै हिलोल हिलोल ॥ ३५ ॥
नवा सुरंगा ओढिया, चगा झीणाँ चीर।
भरती हेमबरन्नियाँ, दूधबरन्नाँ नीर ॥ ३६ ॥
नष सूं लै चोटी लगै, तन छवि माँह नरंत।
लुल मिल कंहरलंकियाँ, लाँबै नीर भरंत ॥ ३७ ॥

( ३२ ) पणघट = पनघट, पानी भरने का स्थान। पाय = पग।

( ३३ ) संचरै = आती हैं। गिरवाण कँवारियां = देवकुमारी। बप = सरीर।

( ३४ ) ज्यांरा = जिनके। द्रग = नेत्र। कच = केस। सोह = सोभा, सब। पंकज = कमल। सीवाल = सिवार, जल के झाग, काई इत्यादि। त्यां हंदा = उनके। ओनाल = जल्दी से।

( ३५ ) जिसा = जैसे। सुकुमार = कोमल। कर = हाथ।

( ३६ ) नवा = नवीन। चंगा = अच्छे। झीणां = महीन, बारीक पोत के। चीर = वस्त्र। भरती = भरती हैं। हेमबरन्नियां = स्वर्ण की सी कांतिवाली। दूधबरन्ना नीर = दूध जैसा पानी।

( ३७ ) लै = लेकर। चोटी लगै = चोटी तक। माँह = में।

लांबै सर पांणी भरै, गोरी गात अनूप ।
ज्यां आगै पांणी भरै, रंभ अलौकिक रूप ॥ ३८ ॥
हेमकलस कुच जुग हिए, नीर कलस सिर लेइ ॥
पणघट हूंतां बाहुडै, कलस दुहूं कर देइ ॥ ३९ ॥
मैंहीं छतीसां दूहड़ां, है बरणन हमरोट ॥
आ हमरोट-छतीसिका, मिनष सुणैं मनमोट ॥ ४० ॥

इति हमरोट-छतीसी समाप्त ।

---

तरंत = तिरता है । लुल = झुककर । मिल = इकट्ठी होकर । केहर-लंकियां = सिंह जैसी कमरवाली ।

( ३८ ) गात = शरीर । अनूप = जिसकी उपमा न लग सके । ज्यां आगै = जिनके अगाड़ी । रंभ = रंभा, इंद्र की अप्सरा ।

( ३९ ) हेमकलस = स्वर्ण के कुंभ । कुच जुग = दोनों स्तन । नीर कलस = पानी का बरतन । पणघट हूंता = पानी भरने के स्थान से । बाहुडै = वापिस आती है । कलस दुहूं कर देइ = दोनों कलशों पर हाथ रखकर ।

( ४० ) मैंहीं = में । छतीसा = ३६ । दूहड़ां = दोहों । बरणन = वर्णन । हमरोट = हमीरकोट, ऊमरकोट का । मिनष = मनुष्य । मनमोट = बड़े मनवाला, शौकीन, दातार ।

इति हमरोट-छतीसी टीका समाप्त ।

# स्फुट संग्रह ( टीका सहित )

( बांकीदासजी के गीत आदि फुटकर छंदों का संग्रह तथा टीका )

## दोहा

माळी ग्रीषम माँह, पोष सुजल द्रुम पालियो ।
जिणरो जस किम जाय, अत घण वूठाँ ही अजा* ॥ १ ॥

शब्दार्थ—द्रुम = पेड़ । जिणरो = जिसका । किम = कैसे । घण = घन, मेह । वूठाँ = बरसने से । अजा = अर्जुनसिंह ।

नोट—एक दिन कविराजाजी महाराज मानसिंहजी के साथ हाथी पर चढ़े हुए जा रहे थे । उस समय रायपुर के ठाकुर अर्जुनसिंहजी मिले—जिनके पास कविराजाजी अपनी सामान्य दशा में जाया करते थे—और उन्होंने पूछा कि आपको उन गाँवों का वृत्तांत भी स्मरण है वा नहीं ? उस समय बांकीदासजी ने उक्त दोहा पढ़कर कृतज्ञता प्रकट की ।

* यह मोरठा पंडितराज जगन्नाथ त्रिशूली के भामिनी-विलास के ३०वें श्लोक का आशय है—

"तोयैरल्पैरपि करुणया भीमभानौ निदाघे
मालाकार व्यरचि भवता या तरोरस्य पुष्टिः ॥
सा किं शक्या जनयितुमिह प्रावृषेण्येन वारां
धारासारानपि विकिरता विश्वतो वारिदेन" ॥ ३० ॥

## १—गीत

प्रथम नेह भीनेा महाक्रोध भीना पछै,
लाभ चमरी भ्रमर झोक लागै
रायकँवरी बरी जेण वागै रसिक,
बरी घड़ कँवारी तेण वागै ॥ १ ॥

हुवे मंगल़ धमल़ दमंगल़ वीरहक
रंग तूठा कमध जंग रूठा।
सघण बूठा कुसुम वास जिण मोड़ सिर,
बिषम उण मोड़ सिर लोह बूठा ॥ २ ॥

करण अखियात चढियेा भलाँ कालमी,
निवाहण बयण भुज बाँधिया नेत।
पँवाराँ सदन वरमाल़ सूँ पूजियेा,
खलाँ किरमाल़ सूँ पूजियेा खेत ॥ ३ ॥

सूर बाहर चढ़े चारणाँ सुरहरी,
इते जस जिते गिरनार आबू।
बिहँड खल़ खींचियाँ तणा दल़ बिभाड़,
पाढियेा सेज रण भोम "पाबू" ॥ ४ ॥ २ ॥

शब्दार्थ—भीनेा = भीगा हुआ। चमरी = चँवरी, विवाह-मंडप। झोक = झोंका। वरी = वरण किया, ब्याही। जेण = जिस। वागै = विवाह के वस्त्र। घड़ = फौज। कँवारी = बिना लड़ी हुई, अनब्याही। धमल़ = धमाल राग। दमंगल़ = युद्ध की चिनगारियां। वीरहक = वीरों का हल्ला। तूठो = प्रसन्न हुआ। कमध = राठौड़। रूठो =

क्रुद्ध हुआ। सघण = बहुत। वूठो = बरसा। वोह = प्रवाह। मोड़ = सेहरा, मुकुट। अभियात = प्रसिद्धि। भलां = श्रेष्ठ। कालमी = घोड़ी का नाम। निवाहण = निर्वाह करने को। नेत = भाजा, कांकण डोरड़े ! पँवारां = परमार राजपूतों के। खलां = शत्रुओं ने। बाहर = सहायता। सुरहरी = गाएँ। विहँड = नाश कर। खींचियां = खींची राजपूत। दल = सेना। विभाड़ = बखेरना, तितर-बितर करना। पोढियो = सो गया। भोम = भूमि।

**भावार्थ**—प्रथम तो प्रेमरस में भीगा फिर क्रुद्ध हुआ और जिसे विवाह-मंडप में ( भांवरी के समय ) युद्ध का झोंका लगा उस रसिक ने जिस विवाह-वस्त्र से ( जामे से ) राजकन्या का पाणिग्रहण किया था उसी वस्त्र से ताजा फौज से युद्ध किया ॥ १ ॥

जिस समय मंगल गीत हो रहे थे उस ही समय युद्ध की चिनगारी उठी और वीर पुरुषों ने युद्ध के लिये हल्ला किया। जिस समय वह राठौड़ वीर विवाह-रंग में प्रसन्न हो रहा था उसी समय उसे युद्ध के लिये क्रुद्ध होना पड़ा। जिसके मोड़ ( सेहरे वा मुकुट ) पर खूब फूलों की वर्षा हुई थी उसी मोड़ पर तलवारें चलीं ॥ २ ॥

जो परमारों के महलों में वरमाला से पूजा गया था वही शत्रुओं की तलवारों से पूजा गया। उस वीर ने अपनी प्रसिद्धि करने को और अपने वचनों का निर्वाह करने को हाथ में भाला लेकर श्रेष्ठ "कालमी" घोड़ी पर सवारी की ॥ ३ ॥

उस शूरवीर ने चारणों की गायों की सहायता के लिये चढ़ाई की। उसका यश तब तक रहेगा जब तक गिरनार और आबू रहेंगे। "पातृ"

वीर ने खींचियों की फौज को नाश करके भगा दिया और स्वयं रणभूमि में अपनी शय्या लगा ली ॥ ४ ॥

नोट—अनुमान से संवत १३८० विक्रमी के आसपास राजपूताने में "पावूजी" नामक राठोर क्षत्रिय बड़े वीर हुए हैं जो अत्यंत धार्मिक और सदाचारशील थे। इनके गुणों की प्रशंसा सम्पूर्ण राजपूताने में फैली हुई है और वे देवता करके माने और पूजे जाते हैं। "पावूजी" मारवाड़ के "कोलूमड़" नामक ग्राम के निवासी थे। उन्हीं का समकालीन "जिनराज" नामक खींची क्षत्रिय "जायल" ग्राम में राज्य करता था। उसी ग्राम में "देवलजी" नामक एक चारणी निवास करती थी जो देवी की अवतार थीं। इन "देवलजी" के पास देवत्वांशसंभूत और विशेष गुणों से सम्पन्न एक "कालिमी" नामक घोड़ी थी। जिनराज खींची ने "देवलजी" से यह कालिमी घोड़ी मांगी परंतु उन्होंने देने से इनकार कर दिया। अतः वह दुष्ट "जिनराज" इनसे शत्रुता रखने लगा और उनके गो आदि धन हरण करके नाना प्रकार से कष्ट देने की चेष्टा करने लगा। इससे "देवलजी" अपनी संपूर्ण संपत्ति लेकर "पावूजी" के निकटस्थ स्थान में आ गईं। "कालिमी" घोड़ी की प्रशंसा सुनकर "पावूजी" ने उसे मांगा तब "देवलजी" ने कहा कि जो वीर मेरे गो आदि धन की रक्षा के निमित्त अपना मस्तक देने को तैयार हो उसी को यह घोड़ी दी जा सकती है। "पावूजी" के इस बात को स्वीकार करने पर देवलजी ने उन्हें घोड़ी दे दी। जब "जिनराज" ने यह बात सुनी तो वह दोनों पर आग बबूला हो गया। और उसने कई दफा "देवलजी" की गाएँ हरण करने की चेष्टा की, किंतु "पावूजी" के प्रताप से वह

कृतकार्य नहीं हो सका। इससे "पावूजी" के गुणों की प्रशंसा बहुत दूर दूर तक फैल गई थी। उसे सुनकर "सिंध" देश के "उमरकोट" नगर के "सोढा" क्षत्रिय की कन्या ने उन्हें वरने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उसी के अनुसार कन्या के पिता ने "पावूजी" के पास विवाह का संदेशा भेजा। इसके उत्तर में "पावूजी" ने कहा कि मैं अपना मस्तक "देवलजी" को दे चुका हूँ, मेरे साथ विवाह करने से क्या लाभ होगा? जब कन्या ने यह बात सुनी तो उसने कहा कि केवल "पावूजी" की पत्नी कहलाना चाहती हूँ और कुछ नहीं। अंत में विवाह स्थिर हो गया। "पावूजी", उमरकोट विवाहार्थ प्रस्थान करने के पूर्व "देवलजी" से, आज्ञा लेने आए। उन्होंने आज्ञा देकर कहा कि यदि "जिनराज" पीछे से हमारी गाएँ घेरेगा तो उस समय तुम्हें यह "कालिमी" घोड़ी सूचना देगी। तब तुम अपने प्रतिज्ञानुसार शीघ्र चले आना; देर मत करना।

पावूजी "जो आज्ञा" कहकर विदा हुए। उनके जाने के पश्चात पापी "जिनराज" देवलजी की गाएँ घेरकर ले चला। "देवलजी" ने अपनी दैवी शक्ति से "पावूजी" का स्मरण किया। उसी क्षण वह "कालिमी" घोड़ी हिनहिनाने और नाचने-कूदने लगी। इस समय उमरकोट में "पावूजी" की भाँवरी (फेरे) हो रही थी। घोड़ी की आवाज सुनते ही उन्होंने कहा—"बस, मुझे संदेश आ गया है; मैं एक क्षण भी नहीं ठहर सकता।" यह कहकर वे, भाँवरी का कार्य बिना पूर्ण किये ही, घोड़ी पर जा चढ़े और वहां आकर खींचियों से भिड़ गए। बड़ी वीरता से लड़कर "देवलजी" की गायों को छुड़ाकर ले आए

किंतु एक बछड़ा नहीं आया था और पीछे रह गया था। उसे फिर लेने को गए। वहां वे बड़ी वीरता से लड़कर काम आ गए। सोढ़ी राजकन्या ने भी, जिसका पाणिग्रहण मात्र हुआ था, सती होकर अपने धर्म का निर्वाह किया। धन्य है यह भारत-भूमि! जहां पर "पाबूजी" सरीखे निजधर्म निभानेवाले दृढ़प्रतिज्ञ क्षत्रिय और "सोढ़ीजी" जैसी क्षत्राणियां जन्म लेती हैं। ऐसे ही वीर पुरुषों और स्त्रियों से इस पवित्र भारत-भूमि की अखिल संसार में उज्ज्वल कीर्ति पताका फहरा रही है।

(स्व० ठा० भूरसिंहजी के "विविध संग्रह" से)

## २—गीत

बस राखो जीभ कहे इम बांको कड़वा बोल्यां प्रभत किसी।
लोह तणी तरवार न लागे, जीभ तणी तरवार जिसी ॥ १ ॥
भारी अगै उगैरा भारत, इकण जीभ प्रताप हुवा।
मन मिलियोड़ा तिकां माढ़वां, जीभ करै खिण मांह जुवा ॥ २ ॥
मैला मिनख बचनरै माथै, बात बणाय करै विस्तार।
बैठ सभा बिच मूंडा बारै, बचन काढ़णो बहुत विचार ॥ ३ ॥
मन में फेर धणीरी माला, पकड़ै नैह जमदूत पलो।
मिलै नहीं बकणा सूं माया, भाया कम बोलणो भलो ॥४॥३॥

शब्दार्थ—प्रभत = प्रशंसा, शाबाशी। अगै = पूर्वकाल में, अतीत में। उगैरा = वगैरह। भारत = युद्ध। इकण = एक। मिलियोड़ा = मिले हुए। तिकां = उनके। माढ़वां = मनुष्यों के। खिण = क्षण। जुवा = जुदा, अलग। मैला = मलिन। मिनख = मनुष्य। ( मैला-

मिनख = दुष्ट मनुष्य । ) माथै = ऊपर । मूँडा = मुख से । बारै = बाहर । धणीरी = स्वामी की, ईश्वर की । पलो = वस्त्र का छोर । भाया = हे भाई !

**भावार्थ**—कविराजा बांकीदासजी कहते हैं कि अपनी जिह्वा को वशीभूत रखो । कड़वे वचन बोलने से कोई शाबाशी नहीं है क्योंकि लोहे की तरवार की चोट वैसी नहीं लगती है जैसी जिह्वा की तरवार की चोट लगती है ॥ १ ॥

एक जीभ ही के प्रताप से पहिले कई महाभारत आदि युद्ध हो चुके हैं और यह जीभ एक क्षण भर में जिन मनुष्यों के मन मिले हुए हैं उनको अलग अलग कर देती है ॥ २ ॥

दुष्ट मनुष्य जरा सी बात के ऊपर उसका विस्तार कर डालते हैं अतः सभा के अंदर बहुत विचार कर मुख से बाहर शब्द निकालना चाहिए ॥ ३ ॥

( हे मनुष्यो ) मन में ईश्वर की माला फेरो जिससे यमराज के दूत कुछ पकड़ ही न सकें और हे भाई ! बकने से तो धन नहीं मिलता है इससे ( बकने की अपेक्षा ) तो कम बोलना ही अच्छा है ॥ ४ ॥

## ३—गीत*

आयो इँगरेज मुलकरै ऊपर, आहँस लीधा खैँचि उरा ।
धणियाँ मरं न दीधी धरती, धणियाँ ऊभाँ गई धरा ॥ १ ॥

---

* ये गीत कविया मुरारिदानजी अयाचक से प्राप्त हुए । उन्हीं ने टीका भी की । ह० ना० ।

फौजाँ देख न कीधी फौजाँ, दोयण किया न खला डला।
खवाँ खाँच चूड़ै खावँदरै, उणहिज चूड़ै गई इला॥ २॥
छत्रपतियाँ लागी नँह छाणत, गढपतियाँ धर परी गुमी।
बल नँह कियो बापड़ा बोता, जोतां जोतां गई जमी॥ ३॥
दुय चत्रमास बादियो दिखणी, भोम गई सो लिखत भवेस।
पूगो नहीं चाकरी पकड़ी, दीधो नहीं मड़ैठो देस॥ ४॥
बजियो भलो भरतपुरवालो, गाजै गजर धजर नभ गाम।
पहिलाँ सिर साहबरो पड़ियो, भड़ ऊभै नँह दीधी भोम॥ ५॥
"महि जाताँ चींचाताँ महिला, ए दुय मरण तणा अवसाण"।
राखो रे किहिँक रजपूती, मरद हिंदू की मुसलमाण॥ ६॥
पुरजोधाँण उदैपुर जैपुर, पहु थाँरा खूटा परियाण।
आँकै गई आवसी आँकै, बाँकै आसल किया बखाण॥७॥४॥

शब्दार्थ—मुलकरै = देश के। आहेस = पराक्रम, शक्ति। उरा-- अपनी ओर। ऊभाँ = खड़े हुए, मौजूदगी में। दोयण = शत्रु। खळाडला = नाश। खवाखांच चूड़ै = कंधे से कलाई तक के चूड़े सहित। खावँदरै = पति के। उणहिज = उस ही। खवाखांच... गईयला = पृथ्वी उसी अपने पुराने पूरे चूड़े सहित दूसरों के अधिकार में चली गई। छाणत = अलखावणी, बुरी। छत्रपतियाँ...... छाणत = राजाओं को यह बात बुरी नहीं लगी। परी गुमी = चली

(१) पाठां०—अड़ियो। (२) पाठां०—इक। (३) पाठां०—चाथाती (दबी हुई))।

गई। बापड़ा = बेचारे। बोतां = डुबोना, खोना। जोतां जोतां = देखते देखते। चत्रमास = चतुर्मास। बादियो = लड़ा। दिखणी = दक्षिण-देश का राजा। महठो देश = महाराष्ट्र देश। बजियो = लड़ा। राजै गजर धजर नभ गोम = तोपों के चलने की अदा से आकाश और पृथ्वी भर गई। चींचातां = चिल्लाते समय। महिला = स्त्री। अवसाण = समय। किहिँक = कोई। पहु = राजा। खूटा = समाप्त हुए। परियाँण = वंश। आँकै = समय, भवितव्यता। आवसी = आवेगी। आसल = असल. आसिया कविराज बाँकीदासजी का गोत्र था।

**भावार्थ**--जब अंगरेज इस देश के ऊपर चढ़कर आए तब उन्होंने सबके पराक्रम को अपनी ओर खींच लिया। पृथ्वी के स्वामियों ने अर्थात राजाओं ने मरकर पृथ्वी नहीं दी किंतु उनके खड़े खड़े ही पृथ्वी ( दूसरों के अधिकार में ) चली गई ॥ १ ॥

शत्रुओं की सेना को देखकर भी किसी ने सेना लेकर सामना नहीं किया और न शत्रुओं का नाश ही किया। यह पृथ्वी तो पूर्व-पति के संपूर्ण चूड़े सहित दूसरों के अधिकार में चली गई ॥ २ ॥

राजाओं को यह बात बुरी मालूम नहीं हुई। किले के स्वामियों की भी पृथ्वी चली गई। इन बेचारे लोगों ने तो पृथ्वी को डुबोते हुए ( खोते हुए ) जरा भी तो पराक्रम नहीं दिखाया। इनके देखते देखते इनकी पृथ्वी चली गई ॥ ३ ॥

दो चतुर्मास ( आठ मास ) तक दक्षिण देश का राजा लड़ा, यदि उसकी पृथ्वी चली गई तो यह होनहार था। उसने तो दासता अंगीकार की ही नहीं और न महाराष्ट्र देश ही दिया ॥ ४ ॥

भरतपुर का राजा भी अच्छा लड़ा। उसने तोपों की गर्जना से आकाश और पृथ्वी दोनों को भर दिया। प्रथम स्वामी का सिर कटकर गिर गया किंतु एक भी योद्धा के रहते हुए पृथ्वी नहीं दी गई॥ ५॥

संसार में पुरुष के लिये दो समय ही मृत्यु के हैं। एक तो जब उसकी जमीन जाती हो और दूसरा जब उसकी स्त्री अन्य के अधिकार में फँसकर असहाय अवस्था में चिल्लाती हो। कवि कहता है कि अरे कोई तो हिंदू मुसलमान या पूर्वी (क्षत्रिय) धर्म रखो॥ ६॥

जोधपुर, उदयपुर और जयपुरवाले राजाओ! तुम्हारा तो यह वंश ही समाप्त हो चला। यह पृथ्वी भवितव्यता से ही गई है और अब होनहार होगा तभी यह आवेगी (स्वतंत्र होगी)। यह बिलकुल ठीक ठीक बांकीदास ने वर्णन किया है॥ ७॥ ४॥

४—गीत*

सुरपुर तूँ गयो अभिनमा सरवा,
सुजस राखि धर स्याम सनाह।
हुवो नहीं मिलणों तो हूँता,
कद मिटसी ओ दुख कलवाह॥ १॥

विभनो तूँ गज गाम बखसण,
हुई तेण पट बरणों हाण।
अणमिलणूँ सो हुवो एम तो,
मिटसी किम मोजाँ महराँण॥ २॥

* यह गीत कविया मुरारिदानजी अयाचक जयपुरवालों से प्राप्त हुआ था।—ह० ना०।

साजी बाजी सुरग सिधायेा,
मिळे दान खग दुवाँ मद।
भेट हुवा नँह जको भाजसी,
कूरम धोको मूझ कद ॥ ३ ॥
देवावत लिछमग जग दाता,
हेळा करग खिताब हुवो।
भिड़जाँ भड़ाँ चारणाँ भाटाँ,
मुँहगा वरतणहार मुवा ॥ ४ ॥ ५ ॥*

शब्दार्थ—अभिनमा = अपूर्व और अनुपम। स्याम सनाह = स्वामी का रक्षक। तो हूँता = तुझसे। कद = कब। विभनो = मर गया। वर्गामण = दानी। तेण = उससे। षट् वरणाँ = मारवाड़ में जती, जोगी, संन्यासी, जंगम, द्विज और चारणों को षट् वरणों (षट् दरसणों) में गिनते हैं। मोजां महराण = दान का समुद्र। साजी वाजी = बनी बात में, धन-वैभव रहते रहते। दुवां = दोनों के। देवावत = रावराजा देवसिंह का पुत्र। लिछमण = सीकर के राव राजा लिछमणसिंह जिन्होंने सं० १८५२ से १८९० तक राज्य किया। हेळा = दान की लहर। भिड़जां = घोड़ों को। भड़ां = योद्धाओं को। मुँहगा = महँगे, बहुमूल्य।

भावार्थ—हे अपूर्व, अनुपम और स्वामी-रक्षक! तू अपना यश

* गीत ३, ४, ५ कविया मुरारिदानजी अयाचक से प्राप्त हुए हैं और उन्हीं ने सबकी टीका की है।—ह० ना०।

( इस पृथ्वी पर ) छोड़कर स्वर्ग को चला गया। हे कश्यपवंशी इसलिये मेरा यह दुःख कब दूर होगा ? ॥ १ ॥

हे हाथी और गाँवों के दान देनेवाले ! तेरी मृत्यु से याचकों की बड़ी हानि हुई। हे दान के समुद्र ! तेरे साथ मेरी भेंट नहीं हुई सो मेरा यह दुःख कैसे दूर होगा ? ॥ २ ॥

तू संपूर्ण धन-वैभव के होते हुए भी दान और यश के अभिमान सहित स्वर्ग को चला गया ! हे कूर्मवंशी ! तुझसे मेरी मुलाकात नहीं हुई सो मेरा यह धोखा कब मिटेगा ! ॥ ३ ॥

हे संसार को दान देनेवाले राव राजा देवीसिंहजी के पुत्र लक्ष्मण-सिंह ! तेरे दान की महिमा से तुझे कर्ण ( पांडुपुत्र कर्ण ) की पदवी प्राप्त हो गई थी। ( शोक ! महाशोक !! ) आज योद्धों, योद्धाओं, चारणों और भाटों को महँगा ( बहुमूल्य ) रखनेवाला इस संसार से कूच कर गया !!!

## ५—गीत

नँह पंचा जाय लाकड़ी नांखै,
वणाँ जोर मज वियाँ घरा।
चाड़ी करै कचेड़ी चढ़िया,
नीर ऊतरै तुरत नरां ॥ १ ॥
बिणज विभा हल हांसल विगड़ै,
कुबद कमाई जगत करै।
झगड़ा लागे जिकाँ झूँपडाँ,
रगड़ा तलबाँ तणाँ रहै ॥ २ ॥

महलां कुशल विराणैं मूँडै,
सूझ हमेस बाँटणां सेस।
कजियारां कीजै मुँह कालां,
कजिया में नितनवां कलेस ॥ ३ ॥
राखै संप जिका धन राखै,
बाँकां दाखै साँच विध।
न्याय नीमड़ै जितै नीमड़ै,
राज चढ़ै ज्याँ तँणी रिध ॥ ४ ॥ ६ ॥*

शब्दार्थ—लाकड़ां = लकड़ी, यहां इस शब्द का यह भाव है—"न्याय के लिये निवेदन करना। वियां = अन्य। चाढ़ी = बुराई करना। कचेड़ी = कचहरी, अदालत। विणज = व्यापार। विभो = वैभव। हासल = कर। कुबद = खोटी। जिकां = जिनके। रगड़ो = झंझट, आपत्ति। तलबी तणां = अदालत के बुलावों का। महलां = महिला, स्त्री। विराणैं = दूसरों के। मूँडै = मुख से। सूझ = दीखे। बांटणां = वितीर्ण करना। सेस = सीरणी, प्रसाद। कजियारां = झगड़े का। नित नवां = नित्य नया। संप = एका, एकता। दाखै = कहता है। जितै = जब तक। रिध = ऋद्धि, संपत्ति। नीमड़ै = समाप्त होवै।

भावार्थ—जब कोई मामला आ पड़े तो पंचों से तो फैसले के लिये निवेदन नहीं करे, और दूसरे वर्गों के जन से अर्थात् दूसरों की

---

* यह गीत कवि हिंगलाजदानजी बारहठ से मिला और उन्हीं ने टीका की तथा अन्यत्र भी शंकाएँ मिटाईं। —ह० ना०।

हिमायत से अदालत में चुगली कर देते हैं अर्थात दावा कर देते हैं। दावा करने के बाद ऐसे मनुष्य शीघ्र ही शक्तिहीन हो जाते हैं ॥ १ ॥

उन मनुष्यों का व्यापार, वैभव और खेती का हासिल बिगड़ जाता है और उनके इस कृत्य की सब संसार निंदा करता है अर्थात संसार ऐसा कहता है कि देखो कैसी बुद्धि बिगड़ी है। जिन घरों में ऐसे झगड़े लग जाते हैं, उनके कचहरी के बुलावों की आपत्ति लगी ही रहती है ॥ २ ॥

ऐसे मनुष्य ( झगड़ेवाले ) अपनी स्त्री की कुशल दूसरों के मुख से ही सुना करते हैं। उनको तो मुकदमे की सफलता के लिये सीरणी ( देवता के मिठाई वगैरह चढ़ाकर ) वितीर्ण करने की ही सूझती है। कवि कहता है कि झगड़े का मुँह काला करो, क्योंकि इसमें ( झगड़े में ) नित्य नया क्लेश प्राप्त होता है ॥ ३ ॥

कविराजा बांकीदासजी सत्य कहते हैं कि जो पुरुष एकता रखते हैं वे ही धन की रक्षा करते हैं, नहीं तो जब तक फैसला समाप्त होता है तब तक मुकदमेबाजों की संपत्ति समाप्त हो जाती है.

## (१) गीत*

( चांपावत खुमाणसिंह जी हेमावतिया चारणां बजाग )

सुज दुरलभ रपाँ बल सिधाँ साधकाँ,
जांगीराजाँ दुलभ जग।

* गीतों के आदि में अंक-संख्याएँ मूल के गीतों की दी गई हैं। और अंत में सिलसिले की संख्याएँ दी गई हैं। इन संख्याओं को ब्रेकेटों में ( ) रखा गया है।

खाटण सुजस भेटियो खूमै,
नरां सुरां बच जको नग ॥ १ ॥
अडसट तीरथ तणां आभरण,
चावौ पावन चार चक ।
राखण बात सेवियो रड़मल,
जग जगाणीवालो जनक ॥ २ ॥
मुकनावत कुल जुग नै मूकै,
सतजुग तेथ गयो ततसार ।
पूरब पंचम उदध न परसे,
अनड परसियो जको उदार ॥ ३ ॥
हर धर ध्यांन कमध हेमालै,
परिहां चाढ़ेवा प्रभत ।
किसन वजोग चारणां कारण,
गलियो जुजठल रात्र गत ॥ ४ ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—सुज = यही । रषां = ऋषि । बल = बलि, फिर । खाटण = पैदा करने के लिये । खूमै = खुमाणसिंह चांपावत जो चारणों के हित के लिये हिमालय गला था । जको = वह । नग = पहाड़, यहाँ पर हिमालय पहाड़ । बच = मध्य । आभरण = आभूषण । चावौ = प्रसिद्ध । चक = दिशाएँ । रड़मल = यहां पर रणमल का, जो जोधपुर बसानेवाले जोधाजी का पिता था, संतति से अर्थ है । मुकनावत = मुकुंदसिंह का पुत्र । तेथ = वहां । पूरब.....पर से = यहां पूर्व दिशा के ५ तीर्थस्थानों से मतलब

है। अनड = अनम्र हिमालय। पारेजां = पूर्वजों को। चढेवा = चढ़ाने के लिए। प्रसन = प्रसिद्ध। किसन = श्रीकृष्ण। वजोग = वियोग।

(२) गीत

श्री महिपति मान रीजवे गुणसज,
कवि समराथ इसा नहि काय।
मान समापे लाख मांगणां
जसा गजनरा विरदां जोय॥ १॥
प्रसन करै नवकोट पतीनूँ,
ईहग कुण एहो अवरेख।
दूण पचास हजार दिए दस,
दादां तणां विसेसण देख॥ २॥
रीजावे कमधां राजा नैं,
वीदग कहा उकति विसाल।
विजाहरां सांसहँस बरीसे,
भूप विरद परियांरा भाल॥ ३॥
नंद गुमान सदा निकलंकत,
बाधै छत्रधरां इणवार।
कर आचार ऊजलो कीधो,
इल गज बंध तणो आचार॥ ४॥ ८॥

शब्दार्थ—रीजवे = प्रसन्न कर। गुणसज = गुण वर्णन करके। समराथ = समर्थ। समापे = समर्पण करते हैं, देते हैं। मांगणां =

याचकों को। जसा = महाराजा यशवंतसिंहजी, जो औरंगजेब के मनसबदार थे। गजनरा = गजसिंहजी के। यह महाराज, यशवंतसिंह जी के पिता थे और इन्होंने विक्रमीय सं० १६७६ से १६६५ तक राज्य किया। ईहग = चारण। अवरेख = निश्चय। दस = यहां "दत" शब्द होना चाहिए जिसका अर्थ 'दान' है। वीदग = चारण। केहो = कौन। विजाहरो = विजयसिंहजी के पौत्र। इन विजयसिंहजी ने सं० १८०६ से १८५० तक राज्य किया था। बरीसै = देता है। परियांरा = पूर्वजों के। गुमान = गुमानसिंहजी, जो विजयसिंहजी के छोटे पुत्र थे। बार्ध = संपूर्ण। छत्रधरां = राजाओं में। इणवार = इस समय। कर आचार = अपने पूर्वजों के आचार (व्यवहार) को करके। इल = पृथ्वी पर। गजबंधतणो = गजसिंहजी का।

भावार्थ—ऐसा समर्थ कौन कवि है जो अपनी कविता के द्वारा महाराज मानसिंहजी को प्रपन्न करे। मानसिंहजी तो अपने पूर्वज यशवंतसिंहजी और गजसिंहजी के विरद (बड़ाई) को देखकर याचकों को लाख पसाव दान देते हैं ॥ १ ॥

(नोट—आगे के दोहों में भी ऊपर जैसा ही भाव है)

## (३) गीत

साधनसिध उभै एक साधन सौं,
बाँका सूधो बाट बह।
रीजै देवनाथ रीजायाँ,
पाव जलंधर मान पह ॥ १ ॥

मारग बाग तणो मति मेटे,
भगत निरंतर उर धर भाव।
तूठे सुतन महेस तूठिया,
सिष मछन्द्र गुमनेस सुजाव ॥ २ ॥
स्रम थोड़े वोह नफो मोपजै,
वीसर मती अनाखी बात।
रहे प्रसन्न ए आयस रीधे,
छात सिधाँ नरपतियाँ छात ॥ ३ ॥
कहवत दुनियाँ माँझ कहाणी,
एक पंथ दोय काज अगे।
एक पंथ त्रिण काज अठे इल,
जिण अवगाहण भाग जगे ॥ ४ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—सिध = सिद्ध हो जाते हैं। सूधो = सीधा, सरल। बाट = मार्ग। वह = चल। देवनाथ = यह मानसिंहजी के गुरु थे। पाव = "पाव" जोगी की पदवी। जलंधर = यह नाथ संप्रदाय के एक बड़े भारी आचार्य हुए हैं। पह = राजा। मति = नहीं। मेटे = मिटा, छोड़े। भगत = भक्ति। तूठे = प्रसन्न होते हैं। सुतन महेश = महेशनाथ के पुत्र, देवनाथ। सिष = शिष्य। मछन्द्र = जलंधर नाथ के गुरु का नाम। गुमनेस = गुमानसिंहजी। यह जोधपुर नरेश विजयसिंहजी के कनिष्ठ पुत्र थे। सुजाव = पुत्र। वोह = अधिक। वीसर = भूलें। आयस = जोगियों में अपने आचार्य को 'आयस' कहते हैं। रीधे = प्रसन्न होने से। छात

सिधां = सिद्ध पुरुषों के छत्रगुरु जलधरनाथ। कहवत = कहावत। आगै = पहिले। अठै = यहाँ पर। अवगाहण = ग्रहण करने से, डूबे रहने से। भाग जगै = भाग्योदय होता है।

भावार्थ—सरल ही है।

(४) गीत

निज सुषरुष सेव करावी नाँही,
दाखै धन धन जाँबूदीप।
चूँडाहरा उवारण चौजाँ,
मौजाँ औहिज मान महीप ॥ १ ॥
देपे गुणाँ गान गज दीधौ,
प्रभुता लाख पसाव प्रवीत।
कमधज राजां तणी कहातै,
ऐ रीजां दूजा अगजीत ॥ २ ॥
जनम जनमरो दलद जालियौ
मंगण सिर करतै महर।
सुपहांची गुमनेस समो भूम
लहरी सागर ऐ लहर ॥ ३ ॥
सरस पुराणां बीच सुणी थी,
किसन सुदामा तणी कथ।
दत देतै साख्यात दिषावी,
सो विध नव सहंसा समथ ॥ ४ ॥ १० ॥

शब्दार्थ—रुप = लिये। दाखै = कहता है। चूंडाहरा = चूंडा के वंशज। चूंडाजी वीरमदेव के ज्येष्ठ पुत्र थे। यह बड़े वीर पुरुष हुए थे। इन्होंने अपने पिता का गया हुआ राज्य जोहियों से पुनः ले लिया था। और मंडोर के राज्य को, जो पहिले इन्दे राजपूतों का था, मुसलमानों से लड़कर सं० १४५१ में प्राप्त किया था। सं० १४६४ में नागोर के नवाब को यहां से चढ़ाई करके भगा दिया। वह सं० १४६६ में मुलतान के अधिकारी फीरोजमुहम्मद को आठ हजार सेना के साथ चूंडाजी पर चढ़ा लाया। इस युद्ध में बहुत से राठोड़ों के साथ चूंडाजी काम आए और नागोर मुसलमानों के अधिकार में चला गया। चौजां = चोचले, आनंद। ऐहिज = यही। प्रवीत = उत्कृष्ट धन। कहाते = यहां कहावै पाठ होना चाहिए। अगजीत = ज्ञात होता है कि कवि ने इस शब्द से महाराज अजीतसिंह की ओर इशारा किया है, जो महाराज यशवंतसिंह के पुत्र थे और जिन्होंने संवत् १७३६ से १७८० वि० तक राज्य किया था। मंगण = याचक। सुपहांचो = राजाओं की। भ्रम = भ्रम। कथ = कथा। नवसहंसा समथ = हे समर्थ राजा नवकोटी के।

नोट—बांकीदासजी को महाराजा मानसिंहजी ने लाख पसाव बखशिश किया तब आसिका में जो गीत कहे उनमें से यह गीत है। अर्थ स्पष्ट है।

## (५) गीत

सिषर गिरां मोरां सबद नाच सरसाविया,
पाविया जल तरां त्रपा पाली।

आविया उमड घणस्याँम बीती अवध,
आविया नहीं घणस्याँम आलो ॥ १ ॥
आपगां दलण गीषम जलण आहौटो,
विसे षटचलण कलियां कदमवृन्द ।
वारवाहाँ कई आठ मासाँ बलण,
नह कई बलणकूँ जसोमत नंद ॥ २ ॥
हरै लीनो हियो तनाँ हरिआलियाँ,
सोर कर सरे दादुर सुहाया ।
गाज ऊंडो करे मेघ आया गयण,
नागरी कानजी घरे नाया ॥ ३ ॥
विवध घणमाल नभचक्र माझल बसी
रवि ससी न दीसै दिवस रजनी ।
मनोभव लगाडै बाँण मोहण मदन,
सहंस बातां सजन आँण सदनी ॥ ४ ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—तरां = वृक्षों को । त्रषा = प्यास । पाली = पालना की, मिटा दी, बुझा दी । आपगा = नदियां । दलण = दलनेवाली, नाश करनेवाली । आहौटी = यहाँ पर "आहुटी" शब्द होना चाहिए, 'आहौटी' में एक मात्रा अधिक है; नाश हो गई । विसे = बस गये । षटचलन = छै से चलनेवाले अर्थात् छः पांवों से चलनेवाले, भौंरे । वारवाहां = वारियाह, बादल । कई = कहा । वलण = लौटने को । सरे = तालाबों पर । गाज = गर्जना । ऊँडो = गहरी । गयण = आकाश । नाया = नहीं आए । मनोभव = कामदेव । लगाडे =

लगाता है। सजन=इसके स्थानपर "सदन" और "सदनी" के स्थान पर "सजनी" पाठ होना चाहिए।

भावार्थ—सरल ही है।

(६) गीत*

पथिक जाय मथुरा कहे जादवाँपतोनूँ,
आपरा मिलणकूँ बात उरलो।
आय गोकल मही लेर सुर अनोखाँ,
मया कर सुणावेा फेर मुरली ॥ १ ॥
सुरभियाँ चरावेा संग लावेा सषा,
चैल आवेा कदम तणी चाँही।
पोष हित वेल गावेा चरित पेमरा,
मुरलिका सुणावेा गोप मांही ॥ २ ॥
अटक गोपी मही दांण उघरावजै,
पावजै अधर रस गोरधन पास।
धर लुकट मुकट वन वीथियाँ धावजै,
बाँसरी वावजै अहीराँवास ॥ ३ ॥
पुलिण रविसुता फहरावजै पोतपट,
आवजै रासथल व्रजनाथ आथ।
काँन कवार विहरि गली व्रज कुंजरी,
सुभ रली कीजियै लाडली साथ ॥ ४ ॥ १२ ॥

* यह गीत "कृष्णचंद्रचंद्रिका" का प्रतीत होता है।—ह० ना०

शब्दार्थ—जादवांपतीनूँ = श्रीकृष्ण को । आपरा = आपके । मिलणकूँ = मिलने के लिये । उरली = हृदय में धारण की, हृदय की । लेर = लेकर । सुर = स्वर । मया कर = कृपा करके । सुरभियां = गायें । चैल = यहां "छैल" शब्द होना चाहिए । चांही = यहां पर भी "छांही" ही होना चाहिए । वेल = यहां पर 'वले" शब्द होना चाहिए, ( वले = फिर )। घोष = ग्वालियों का गांव । अटक = रोक करके । मही = दही । दाण = कर, महसूल । उघरावजै = वसूल करिए । पावजै = पिलाइए । बांसरी = बांसुरी । वावजै = बजाइए । पुलिण = पुलिन, किनारा । रविसुता = यमुना नदी के । आथ = एथ = यहां । रली = रास ।

(७) गीत*

अडर मूल डर न धारै कसरी आँणरो,
पिता माता तणो डर न पृठै ।
जतनसूँ सषो दध वेचवा जावताँ,
अचानक काँनरी धाड़ ऊठै ॥ १ ॥
गा आल दोडै करै एकठी गोपियाँ,
चीर षाँचै घणै हांस चाडै ।
गिरावै धूत गोरस भरी गागराँ,
पूत जसुदा तणां राह पाडै ॥ २ ॥
करग मसलै उरज तोडे अँगियाँ कसाँ,
चित चलै अलोकिक करै चालो ।

* यह गीत भी "कृष्णचंद्रचंद्रिका" का प्रतीत होता है ।— ह० ना० ।

वेष नटतणै पडो बनबोथियाँ,
बटपडो कुँवर ब्रजराजवालो ॥ ३ ॥
मगाज भइयो वहै चाहि न रंपै मुकट,
बन सघण माँहि मुरली बजावै ।
इसा हर धकै चढ इसी कुण अहीरी,
अँगूठो दिषावे भराँ आवै ॥ ४ ॥ १३ ॥

**शब्दार्थ**—मूल = किंचित भी । आणरो = आज्ञा, हुकूमत, दोहाई । पूठै = पीछे की ओर । धाड़ ऊठै = लुटेरों का समूह उठता है । गा आल = इस स्थान पर "गोआल" शब्द होना चाहिए, (गोआल = ग्वालिये) । एकठी = इकट्ठी । पांचै = खींचते हैं । घणी हांस चाडै = बहुत ज्यादा मसखरी करके । धूत = धूर्त, बदमाश । राहपाडै = मार्ग में लूट लेता है । करग = हाथ से । कसा = डोरियां जो अँगिया बांधने की होती हैं, कसणी । तोडे = यहां पर "तोड" शब्द चाहिए क्योंकि इस तुक में एक मात्रा अधिक है । चित चलै = मन चलायमान हो जाना है । (ऐसे) अलौकिक चालो (= खेल, तमाशा) करे । बटपडो = लुटेरा । मगाज...... मुकट = इन शब्दों का कुछ अर्थ ठीक ठीक नहीं होता है अतः यहाँ पर "मगज भरियोवहै छांहि निरखे मुकट" पाठ हो तो उत्तम है, जिसका अर्थ यह है = गर्व में भरा हुआ और अपने मुकुट की परछांही को देखता फिरता है । हर = हरि, श्रीकृष्ण । धकै = सामने, सम्मुख । धकै चढ = सम्मुख आकर । अंगूठो दिषावे = यह मुहावरा है । इसका अर्थ है—चिढ़ाकर, यहां बचकर ।

भावार्थ—गोपियां आपस में कह रही हैं; और अर्थ सरल ही है।

(८) गीत*

अत परमल पसर पसरिया आँबा,
सुक पिक बोलै सुषद सराग।
रतिपति ताँणै धनुष जठै रुच,
बरसाँणै देपण ज्यूँ बाग ॥ १ ॥
बेली तरलाँ तराँ विलूंबी,
बण हरियाली वीस वसा।
त्रप त्रषभाँण तणाँ हर नागर,
उपवन जोवण जोग इसा ॥ २ ॥
भणणैं भमर वास रस भूला,
सब रत फल दल फूल समाज।
वलसौ रस बस जाय बगोछां,
राधा जनक तणा व्रजराज ॥ ३ ॥
मचियौ झड़ मकरंद माधवी,
नंद सुतन दुष सरब नसंत।
बणियां रहै बाडियां बागां,
बरसाणै सासतो बसंत ॥ ४ ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—अत = अति, ज्यादा। परमल = परिमल, सुगंध। पसरिया = फैले। आंबा = आम। सराग = राग सहित। जठै =

* यह गीत भी "कृष्णचंद्रचंद्रिका" का प्रतीत होता है।—ह० ना०।

जहाँ पर। बरसाणै = बरसाना ग्राम। देखण ज्यूँ = देखने जैसा। तरली = बढ़कर। तरां = वृक्षों के। विलूंबी = लिपट गई। बण = वन। वीसवमा = बीस बिस्व, पूर्ण। हर नागर = हे श्रीकृष्ण। अप..............इसा = हे श्रीकृष्ण, राजा वृषभानु के ऐसे बाग देखने के योग्य हैं। भणणै = भिन भिन कर रहे हैं, गूँज रहे हैं। बास रस भूला = सुगंध से मतवाले होकर। रत = ऋतु। वलसो = विलसो, उपभोग करो। वगीछां = बागों में। मचियो...... माधवी = मकरंद और माधवी की झड़ी (वर्षा) लग रही है। सासतो = हमेशा।

भावार्थ—कोई दूती श्रीकृष्ण को राधा के पास ले चलने को वृषभानु के बगीचे में वसंत ऋतु का हर समय निवास बता रही है।

(६) गीत*

सिललधार जलधर लगौ मूँड आकृत अवगा,
चमँकियो लोकबल कमण चाले।
जण समै धरै गिर धणी ते जिम जकै,
पूज सुरपत तणी भलाँ पाले ॥ १ ॥
प्रलै व्रज करेवा नीम दाँमण पतन,
गयण फूटै घटा भीम गरजै।
उठावै अछलतो जेम हलधर अनुज,
बल तकै यंद्रछो भलाँ बरजै ॥ २ ॥
गोप गायाँ त्रिया सहत वसिया गिरत

* यह गीत भी "कृष्णचंद्रचंद्रिका का प्रतीत होता है।—ह० ना०

चिरत अदभुन तणी करत चरचा।
आप जिम करग नग थपै दर उचत ऐ,
ऊथपै पुरंदर तणी अरचा ॥ ३ ॥
नाम गोवँद थयौ नमाँ नँदराय नँद,
अमँद जस गोरधन आभ अडियो।
छोड़ आसण गयंद धाक माने छली,
पाकसासण बली पगां पडियो ॥ ४ ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—सिललधार = सलिलधार, जल की धारा। आकृत = आकृति। श्रवण लगौ = चूने लगा, बरसने लगा। चमँकियो = आश्चर्य किया, भयभीत हुआ। कमण = किसका। ते = यहाँ "तो" शब्द चाहिए। तो = तेरा। धणी = स्वामी। पूज = पूजा। भलाँ = ठीक। पालै = रोकै। जण समै.....भलाँ पालै = हे स्वामी ( श्राकृष्ण ), तुम्हारी तरह जो उस समय गिरि को धारण करे ( उठाए ) उसी का इंद्र की पूजा को रोकना ठीक है। नीम = नींव, निश्चय। दामण = बिजली। गयण = आकाश। भीम = अत्यंत, घोर। अछलतो = यहाँ "अचलतो" पाठ होना चाहिए। बल = बलि, पूजा की सामग्री। तके = वह। यंदछी = यहाँ "इंदर्छी" पाठ होना चाहिए। ची = की। गिरँत = "गिरँद" पाठ चाहिए। गिरँद = पर्वत। चिरत = चरित्र। करग = हाथ पर। नग = पहाड़। थपै = स्थापित करे। दर = असल में, वास्तव में। ऊथपै = उत्थापित करे, उठावे, रोके। अरचा = पूजा। थयौ = हुआ। नमाँ = नमस्कार करते हैं। आभ = आकाश। अडियो = अड़ गया,

लग गया। धाक = भय। मानें = मानकर। छली = कपटी।
पाकसासण बली = बलवान् इंद्र। पगां = चरणों पर।,

भावार्थ—सरल है।

(१०) गीत*

कमल मुगट गाढो करै पीतपट बांधकट,
भ्रात बल हाथ दे लकुट भालो।
कुमलियापीड सिर विकट आभाज कर,
कडछियो कांन नटराज कालो॥ १॥
कमुद-जन विकस सकुचै कमल-कंस कुँभ,
भावकाँ चकोराँ नयण भायो।
सबल तम तोम मथुरा गयंद तणै सिर,
अकल गोकल तणो चंद आयो॥ २॥
उचजी कुंभथल थाप जडको उड,
तुरत कर एकसूं बजी तालो।
करी मुख रदन कालीदमण काठिया,
महो मूलो कढो जोग मालो॥ ३॥
मद सिलल तणाँ चांटा हियै नीलमण,
राजिया रुधर चाँटा पदमराग।
अडग पग मांड राधारमण उडायो,
नग समो विलँद मग विप गगन मग नाग॥४॥१६॥

---

* यह गीत भी "कृष्णचंद्रचंद्रिका" का प्रतीत होता है।"—ह० ना०।

शब्दार्थ—कमल = मस्तक । गाढ़ै करे = कस कर । बल = बलदाऊ । भालो = देखो । कुमलियापींड = कंस का हाथी कुवलयापीड । आप्राज कर = गर्जना कर के । कडछियो = झपटे । विकस = विकसित हुए । सकुछे = यहां "सकुचे" पाठ होना चाहिए । कुंभ = यहां 'कुच' पाठ होना चाहिए । भावकां = भावुक, सहृदय, दर्शक । तोम = समूह । अकल = पूर्ण स्वच्छ, उज्ज्वल । उचजी = यहां "ऊछजी" पाठ होना चाहिए । ऊछजी = उछलकर, झपटकर । कुंभथल = कुंभस्थल । थाप = थप्पड़ । जडकी = मारी, लगाई, जड़ी । उरड = पराक्रम । करीमुख = हाथी के मुँह से । काठिया = यहां "काढिया' पाठ होना चाहिए । चांटा = "छांटा" पाठ होना चाहिए । राजिया = सुशोभित हुए । नग = पहाड़ । विलँद = बुलंद, बड़ा । विप = यहां "वप" या "वपु" पाठ होना चाहिए. ( वप = शरीर ) । नाग = हाथी । नग......नाग = इस तुक में दो मात्राएँ अधिक हैं, "मग" शब्द एक ही स्थान पर होना चाहिए । "मग" शब्द एक स्थान पर से निकालदेने से यह पाठ रह जाता है "नग समो विलँद वा गगन मग नाग" ।

## ११—गोत

कीजै नींबरी गूँट ज्यूँ पोजै प्यालो कालकूट केम,
मणाँ तोल तोलियाँ तुलीजै केम मेर ॥
बीजौं कलाँ पाँतरै अमीरदोलो गेर बैठो,
न जावै भलीयो आंढो कलो रायाँनेर ॥ १ ॥

दगै तोफाँ वहै गोलारोहला मोरछा दोला,
जो लार सकै सूता सेरनै जगाय ॥
भूरजाल वांकडो बीटीया दूजां गढां भालो,
लोहां जाल धसै कहो नसैणो लगाय ॥ २ ॥
लेर वीडो लीधी जिका पूंनारी संपदालूट,
फरकावादनै कीधी षाप मापफेर ॥
तको लेवांयै देर हलो न कीधो वजाड तासा,
उदोरा पतारो कोट दूमरा आसेर ॥ ३ ॥
रायांनेर वजमा वणायो गाढ रावरूप,
आयो श्रीगोपाल वेल चाढे वंस आव ॥
हजारां रसाला वाढ अपाडै दिखाया हाथ,
नबीरी कमर्मा काढ वखाणै नवाब ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—गूँट = गुटक। नीबगां = नीम की। केम = कैसे। मेर = मेरु पर्वत। बीजौ = दूसरा। कलां = किला। पांनरे = भूलकर धोखे में। अमीर = नवाब मीरखाँ जिसने जोधपुर की गद्दी मृत राजा भीमसिंहजी के पुत्र धोंकलसिंह को दिलाने के लिये सवाईसिंह आदि के साथ जोधपुर का किला घेर लिया था, जिसने उस समय पर राजस्थान में बहुत लूट-खसोट मचा रखी थी और जो अंत में अंगरेजी सरकार के संधिपत्रानुसार टोंक आदि लेकर नवाब बन गया था। दोलोगेर = घेरा डालकर। भलीयै = यहां भेलियै पाठ होना चाहिए। भेलियै = घुसना, अंदर जाना। ओढो = विकट। तोफां = तोपें। दोला = चारों ओर। लारसकै = यहां बकारसकै पाठ होना चाहिए

क्योंकि एक मात्रा कम है। भूरजाल = किला। बांकडो = बांका, विकट। बींटियो = घेर दिया। भैलो = यहां 'भैलै' पाठ होना चाहिए। भैलै = धोखे में। धसै = घुसना। केहो = कौन। नसैणी = सीढ़ी। लेर = लेकर। बींडो = बीड़ा। पूनारो = पूना शहर की। सन् १८०२ ई० में जसवन्तराव हुल्कर के साथ अमीरखां ने, सदाशिवराव बल्वशी वायस साहब पर जो सेंधिया के तरफदार थे और जिनके साथ में शहामतखां व नागोजी पंडित भी था, चढ़ाई की जिसमें सेंधिया हार कर पूना भाग गया। फिर हुल्कर ने और अमीरखां ने पूना पर चढ़ाई की जिसमें वायस साहब तो काम आ गए और दौलतराव सेंधिया और पेशवा बाजीराव वगैरह भाग गए। फरकाबाद = शहर का नाम जो देहली के पास है। फरकाबाद का लूटना तो किसी इतिहास से नहीं जाना जाता है। किंतु ऐसा मालूम होता है कि जब जसवंतराव हुल्कर "मामी साहब" को हरा चुका था उस समय जनरल लेक ने जसवंतराव को फर्रुखाबाद में हराया था और होल्कर वहां से भाग कर भरतपुर आ गया था, उस समय उसने भील से अमीर छोटा को अपनी मदद के लिये बुलाया था और वह (अमीरखां) कई गांवों शहरों को लूटता हुआ हुल्कर से भरतपुर में आ मिला था। संभव है इसी समय अमीरखां ने फर्रुखाबाद को लूटा हो क्योंकि शहरों के नाम तो कहीं दिए नहीं गए हैं जिससे ठीक ठीक बातें मालूम हो सकें किंतु लूट-मार अवश्य की गई थी ( तवारीख टोंक से )। तकां = उनको उन शहरों को। बजाड = बजाकर। तासा = एक प्रकार का चमड़े से मढ़ा हुआ छोटा चपटा ढोल, जो सीने के आगे रख कर बांस को

खपच्चियों से बजाया जाता है। उद्रांरा = यहां उदांरा पाठ होना चाहिए, उदांरा = उदावत राजपूतों का। पतारो = यहां 'पतीरो' पाठ होना चाहिए, पतीरो = मालिक का। आमेर = किला। रावरूपै = राव रूपसिंह जिन्होंने इस किले को बनाया था। वेल = सहायता। आब = आभा, कांति। अखाड़ै = मैदान में।

नोट—इतिहास से तो ज्ञात नहीं होता कि किस समय पर अमीरखां ने रायनेर के ऊपर चढ़ाई की थी किंतु ऐसा ज्ञात होता है कि जब अमीरखां ने मृत राजा भीमसिंह (जोधपुर) के पुत्र धौंकलसिंह की तरफदारी करके महाराजा जगतसिंह (जयपुर), महाराज सूरतसिंह (बीकानेर), पोकर्ण के ठाकुर सवाईसिंह आदि के साथ महाराजा मानसिंह जी के विरुद्ध जोधपुर पर चढ़ाई की थी, उस समय महाराजा मानसिंह जी ने बीस लख रुपया देने का वादा करके अमीरखां को अपनी तरफ मिला लिया था। इसलिये फिर जोधपुर पर चढ़ाई करनेवालों को सफलता नहीं मिली और वे अपने अपने स्थान पर वापिस चले गए। अमीरखां कई कारणों से वहीं रुक गया था। इसी समय पर संभवतः इसने रायनेर पर घेरा डाला हो जिसका वर्णन कविराजा बांकीदास जी ने उक्त गीत में किया है।

१२—गीत

मनै मान डर गुमर छोडं अगर मीररै,
हैदराबाज जोड़ै दुहूं हाथ।
भीर आवां जपै सुरतसी तणा भड,
नरभावै पीजियै जोधपुर नाथ ॥ १ ॥

अमरसर बथूंडै थेट लाहौर अब,
छलीपांमे दरब ताप छाया।
करो मो मृत बीकांण पाया कहै,
अजा दूजा तणां कटक आया ॥ २ ॥
सायबाँ फिरंगाँ धकै जंगल सोहड़,*
घात नज दुष पढै सोछ गाढै।
जुडै मांसजा जैपुर तणां जिलासूँ,
किलासूँ मांन माहराज काढै ॥ ३ ॥
तुरक हिंदू रहै फिरंग मालकत
के कहै बीकांणरा कूककरणाँ।
भूप नव कोटरा अगर हामल भरै,
चाकरी करौ सिर धरौ चरणाँ ॥ ४ ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—गुमर = घमंड। चोडे = यहाँ 'छोडे' पाठ होना चाहिए। अगर = सन्मुख। हैदराबाज = तत्कालीन समय में हैदराबादी रिसाला नामक एक सेनादल भी राजस्थान आदि देशों में खूब लूट-मार करने में प्रसिद्ध हो गया था तथा रुपयों के लोभ से हर किसी की तरफदारी करके लड़ने को तैयार रहता था। कविराजा जी का इसी ओर इशारा है। भीर = यहां 'भीड' पाठ होना चाहिए। भीड़ = सहायता। जपै = कहते हैं। सुरतसी = बीकानेर के महाराज सूरतसिंह। तणां = का। भड = योद्धागण। नरभावौ = यहाँ 'निभावौ' पाठ होना चाहिए, निभावौ = पूर्ण करो। बथूंडै = खूब

* "गीत गावै हीयै भींत गाढै" यह और लिखा है।

छानबीन की। थेट = अंत तक। मृत = यहाँ 'मदत' पाठ होना चाहिए, क्योंकि एक मात्रा की कमी है। अजा = यशवंतसिंह के पुत्र अजीतसिंह। दूजा दूसरे। धकै = सन्मुख। जंगल सोहड़ = बीकानेर के सुभटगण। नज = यहाँ 'निज' पाठ होना चाहिए। सोछ = यहाँ सोच पाठ होना चाहिए। जिलासूँ = जिलायत से, मदद से। तुरक.....मालकत = इस पद में एक मात्रा की कमी है। अतः ऐसा पाठ हो तो उत्तम हो "तुरक हिंदू रहै फिरंगी मालकत" इसका अर्थ होगा "क्या हैदराबादी रिसाले से, क्या जयपुर से और क्या अंगरेजों से किसी से भी इस युद्ध में सहायता नहीं मिली। के = क्या। बीकांणरा = यहां एक मात्रा बढ़ती है इसलिये "बीकाण" ही होना चाहिए। कूककरणां = दूत। भरै = यहाँ पर "भरौ" पाठ होना चाहिए।

नोट—महाराज मानसिंह (जोधपुर) ने बीकानेर के ऊपर इसलिये चढ़ाई की थी कि बीकानेर के महाराज सूरतसिंह ने धौंकलसिंह का पक्ष लेकर मानसिंहजी पर चढ़ाई की थी। ९ महीने के घेरे के बाद जब अन्य सहायकगण चले गए तब बीकानेरवाले भी वापिस आ गए और लौटते समय फलौदी को अपने अधिकार में कर लिया। इस पर मानसिंहजी ने समय पाकर बीकानेर पर चढ़ाई की और युद्ध का कुछ खर्च तथा फलौदी लेकर सन्धि कर ली।

## बाँकीदासजी के स्फुट सवैया, कवित्त, छप्पै आदि ॥

### सवैया

माते गयंद घने गरजे घन की रितु मानो घटा घहरानी ।
**बंक** निसान लगे फहरान पिसाचरु प्रेत उमंग सी आनी ॥
बाजनके खुरतार बजेरु मिवास भजे प्रलयाकृत ठानी ।
**मान** महीप कियौ दल मानव चढ़ि उतर्यौ सिरोही के राव को पानी ।१।

शब्दार्थ—माते = मस्त । गयंद = हाथी । खुरतार = खुरताल, घोड़ों की नाल । मिवास = स्थान । भजे = भग गए ।

नोट—( १ ) इस छंद के अंतिम चरण में गण ठीक नहीं हैं अतः गति में बहुत फर्क आता है । ( २ ) महाराज मानसिंहजी की सिरोही पर चढ़ाई का हाल "सिरोही का इतिहास" में रा० ब० महा-महोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचंदजी ओझा इस प्रकार लिखते हैं—"जब जोधपुर के महाराज विजयसिंह का देहांत हो गया तब भीमसिंहजी गद्दी पर बैठे और अपने सब भाइयों को नष्ट कर दिया । मानसिंहजी ने पाली लूटकर जालौर का किला अपने अधिकार में कर लिया । भीमसिंहजी ने इनके विरुद्ध जालौर को घेर लिया । इस समय मान-सिंहजी ने चाहा कि हमको भी अजीतसिंहजी की तरह सिरोही में शरण मिल जावेगी इसलिये अपना जनाना तथा कुँअर छत्रसिंह को सिरोही भेज दिया, किंतु यहाँ के महाराव वैरीसाल ने भीमसिंहजी के डर के मारे इनको शरण नहीं दी; इसलिये इनको लौटना पड़ा । लौटते समय कुँअर छत्रसिंह की आँख एक दरख्त की शाखा लगने से फूट गई । इससे महाराज अत्यंत ही क्रुद्ध हुए । जब भीमसिंहजी की मृत्यु के

बाद महाराज मानसिंहजी गद्दी पर बैठ तब उन्होंने बदला लेने के लिये भूतज्ञानमल को सिरोही पर भेजा। उसने वहाँ खून लूट-मार की और सिरोही को तबाह कर दिया।

( ३ ) आगे के और छंदों में भी इसी सिरोही राज्य पर चढ़ाई का वर्णन है, वे भी इसी इतिहास से सम्बन्धित हैं।

कवित्त *

केसो इंद्रजीत कुलपति रामसिंहजूकै
चंद प्रथ्वीराजकै खुमाल कहै जनकै।
भंगड़ ज्यों रानकै विहारी जयसिंहजूकै
गंग हौ प्रवीन अकबर सुलतानकै॥
भूषन सिवाकै लीलाधर गजसिंहजूकै
कवि ज्यौं कवलनैन अनुवरखाँनकै।
कालीदास भोजकै ज्यौं विक्रमकै वयताल
त्यौंही कवि **बाँकीदास** महाराजा **मांनकै** ॥२॥

**शब्दार्थ**--अर्थ सरल ही है।

सवैया

पूरब और दिनेस उदै अरु संभु कौ ध्यान पुरानन गायौ।
भीषम सील धनंजय बान विरंच कै आँक त्रिलोक बनायौ॥
भूमकी मंड भुजंगम सीस तें औ ध्रुव थान अखै छबि छायौ।
एत टरैं तो टरैं पै टरै नहिं **मांन** महीपत को फुरमायौ॥ ३॥

* इस संग्रह में यह कवित्त बहुत गौर का है। इसमें अन्य विख्यात कवियों के साथ बांकीदासजी का नाम है।

शब्दार्थ—मंड = मंडलाकार। औ = यह। ध्रुव = ध्रुव। थान = स्थान। अखै = अक्षय। एत = इतने। फुरमायो = कहा हुआ।

सवैया

**मांन** गुमान के नंदन सौं रन कौंन रचै वर नाथ कौ पायौ।
**बंक** प्रताप मनौ जयचंद सबै जग कौ जस उज्जल छायौ॥
रावकरी तहिसौं अकसै फिर भाज गयौ रन भोम न आयौ।
एसोही काज कर्‌यौ चहुवांन सु लाजविहीन ह्वै नाम लजायौ॥४॥

शब्दार्थ—नाथ = कनफटे साधु, महाराजा मानसिंहजी को नाथ-संप्रदाय के साधुओं पर बहुत ही श्रद्धा-भक्ति थी। अकसै = शत्रुता।

कवित्त

माते वीररस एसे बिदा भए जोधमिल
प्रबल प्रथीप **मांनसिंघ** महामानी के।
साज्यौ हल्लालीनीजू सिरोही ताव तेगन के
भाज्यौ राव तजकै समाज रजधानी के॥
क्रुद्ध कर लखपति मान सुरतान कीने
**बाँकीदास** कहत हुकम पायबानी के।
मुर गए जोमदेव रानके प्रवारे भारे
दुर गए पांवांगढ़ दिल्ली औ दतांनी के॥५॥

शब्दार्थ—प्रथीप = पृथ्वी के मालिक। ताव तेगन कै = तेगों की मार से। प्रवारे = प्रसिद्धि।

कवित्त

प्रबल प्रकासै तेज **मांन** रविबंसमनि
ताकी त्रास सिंध से जवन देस धरकै।
दच्छनी सरन आए गाए जसगीत जग
सुन कै पता उर अरिन की दरकै॥
**बाँकीदास** कहत सिरोही तैं जु भाग्यो राव
पाग्यो भय ताकी चतुरंगनी सौं अरकै।
संबत अठारै मांझ गमए अठारै गिर
विनमति अठारै विसेकी बात करकै॥ ६॥

शब्दार्थ—अरकै = अड़कर। गमए = खोए। करकै = कड़कती है, खटकती है।

सवैया

नृप **मांन के बंक** सुभाव बिलोकत चित्त की बृत्ति अचंभो धरै।
चतुरानन आन पढ़ावै विचच्छन तोउन जीभ नकार ररै॥
सुरबैद धनंतर संजुत आन नयो रच चूरन दैंरु अरै।
नहिं जद्यप रीज पचै यहकौं गज गांम गुनीन कौं दान करै॥७॥

शब्दार्थ—विचच्छन = विलक्षण। ररै = कहे। चूरन = चूर्ण। दैंरु = देकर फिर। अरै = अड़ना, रोकना। रीज = दातव्यता। पचै = हजम होना।

सवैया

तैं पहिलै तन गाढ़ गह्यो अरु फौज लई रच खेल खजांनो।
**मांन** महीपति के दल आए सक्यो नहिं थांभ तू वेग भजांनो॥

राव सौं संभुपुरी यह रीत उचारै अकीरति या जीव जांनौ ।
तेरौ तौ नाम लज्यौ सौ लज्यौ पर तोकर मेरौ ही नाम लजांनौ ॥८॥

शब्दार्थ—सक्यौ नहिं थांभ = रोक नहीं सका ।

छप्पै

मसत हसत बहु मोल द्वार भूमै खलदाहण ।
बालाँ हींसे बाज वणै जांणे रविवाहण ॥
कंचण जवहर क्रंत विविध सिंगार बडाई ।
पौमाकां परमलै अतर डमरां छबि आई ॥
साजां जलूस डेरा सरस नेमहूँत उण तन लसी ।
महिदेवनाथ तो महिरसौं बंकतणैं नवनिध बसी ॥९॥

शब्दार्थ—मसत = मस्त । हसत = हाथी । बालां = घोड़ों के बँधने का स्थान । डमरां = सुगंधि, समूह । देवनाथ = महाराज मानसिंहजी के गुरु ।

१३—गीत

कंचण खंभ मंडति कीन वरणण छबिकराँ,
झलहल क्रंतपूर झलूस मुगता झालराँ ।
अद्भुत बितानां आरंभ मोल अपंपरा,
जोडै डमर डेरां जोग भाद्रव जलधराँ ॥१॥
बिध बिध बनीयां बिसतार चाँदणियाँ वणै,
उज्जल खीरसिंधु अमंद लहराँ ऊफणै ।
प्रघटै जटत जवहर पंत अति आछापणैं,
तौराँ मांन राजै तखत परस रवितणै ॥ २ ॥

अविचल छत्र सुखसुख ओप उछव आँणजै ।
परतख अलंकृत जस पंज प्रभन प्रमांणजै ॥
बांणक डुलै चमरां बस इम बाखांणजै ।
जगमग सूर सीस जरूर ससिकर जांणजै ॥ ३ ॥
उकतां सुकवि बोलै ऊच बिरदां आवलो ।
राजस भडां गहमह रूंस पूरण निरलो ॥
बोह जुग तपांनृप धजबंध ओ आपह बली ।
मुरधर **गुमाननंद** मयंद थिर महि मंडली ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—क्रंतपूर = क्रांतियुक्त । झलूम = जलूस । मुगता = मोती । झालरां = झालर । मोल = मूल्य । जोडै = समान । डंबर = समूह । बांणक = बणाव । गहमह = अधिकता । रूंस = इच्छा । बोह = बहुत । आपह बली = स्वयं बलवान् । मुरधर = मारवाड़ । मयंद = सिंह ।

( जोधपुर की पुस्तक नं० १ से )

[ इन छंदों को कविया मुरारीदानजी जयपुरवालों को दिखा कर निश्चय किया गया कि ये छंद संभवतः कविराजा बांकीदासजी की ही रचना है । ]

## १४—गीत

कीधौ तैं कोप साजियो कांनो, रडमल नै दीधा ते राज ।
चारण वाडांतणां चारणी, लोक मही तूं राखै लाज ॥ १ ॥
वटपाडां धरपाडां वाली, आभ जडां नांखै ऊपाड़ ।
कोय न गांज सकै कनियांणी, झीझलियाल तुहाला झाड़ ॥ २ ॥

मेछां अपराधियाँ मारणी, भलां सेवगाँ आवै भाव।
करै कराँ छाया तूं करनी, गाजै कुण गढवाडाँ गाव ॥ ३ ॥
**बाँका** मेहासधू म बीसरै, संकट हरै साँभलै साद।
गढवाडा गढ औलै गाजै, मढरै औलै गढाँ अजाद ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—कांनो = जांगलू का स्वामी जिसको करणीजी ने मारा था। रड़मल = रणमल, जो काना के छोटे भाई थे। इनके पुत्र राव जोधाजी ने जोधपुर बसाया। बाड़ां = निवासस्थान। वट पाड़ां = लुटेरे। धरपाड़ां = पृथ्वी छीननेवाले। वाली = उनकी। आभ = आसमान। जड़ां = जड़मूल से। नाख = डाले। ऊपाड़ = उत्थापित करके। गांज सकै = नाश कर सके। कनियांणी = करणीजी का गोत्र यहां संबोधन है। झीझलियाल = हे झींझरे पहिननेवाली। तुहाला = तेरे। झाड = जमीन। मेछां = म्लेच्छ। गढवाड़ां = चारणों के। मेहासधू = मेहाजी की पुत्री। साद = शब्द। औलै = संरक्षण में। मढरै = करणीजी के मंदिर के।

नोट—यह गीत भी करणीजी की स्तुति में है किंतु अधूरा ही है।

## १५—गीत

सेषारावनूं मुलतांण सपाहाँ, जडियौ साँकल जाली।
पाछौ जिकौ आंणियौ पूंगल, देवी थै दाढ़ाली ॥ १ ॥
मेलै फौज कामराँ मिरजौ, ऊ जंगल धर आयौ।
केवी तैं भाजै कनियाँणी, जैतराव जितायौ ॥ २ ॥
कोट घेरियौ पैला कटका, अधिक साँकडै आयौ।
कै वेला माता तै करनी, बीकानेर बचायौ ॥ ३ ॥

**बाँकौ** कहै टलै दिन विपमा, धणियाँणी नै धायाँ ।
लोवडियाल ताप नँह लागै, ओलै थारै आयाँ ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—मेघाराव = यह पूंगल का राजा था जिसको मुलतान के नवाब ने कैद कर लिया था। सपाहाँ = राजा। पाछौ = वापिस। जिकौ = उसको। आंखियाँ = लाए। दाढ़ाळी = डाढ़ीदार। ऐसा प्रसिद्ध है कि करणाजी के कुछ कुछ डाढ़ी थी। कंवो = शत्रु। पैला = अन्य। सांकडे = नजदीक। के वेला = कितनी दफा। दिन विपमा = मुसीबत के दिन। धणियाणी = स्वामिनी। धायां = ध्यान करने से, स्मरण करने से। लोवड़ियाल = हे लोई ओढ़नेवाली ( लोई = एक प्रकार का बढ़िया कंबल )। ओलै = शरण में। थारे = तुम्हारे।

१६—गीत

चौसट अवधान तणी चतुराई, बोलण माहराजां बिरद ।
पूबी मिली धारणा ध्यातां, जगदंभा तो क्रपा जद ॥ १ ॥
प्रस्नोत्तर चरचा मत पींगल, भूषण सबद अरथ रस भाय ।
**बाँकैदास** जाँणिया बिध बिध, राज अनूग्रह जंगल राय ॥२॥
भाषा बृज मारू सुर भाषा, भाषा प्राक्रत जांन भर ।
पायौ रचण रूपगां पैंडा, मेहाही थारी महर ॥ ३ ॥
कांमधेनु सुरनर तू करनी, जेण किता यक करूँ जस ।
मांनधणी तैं दीधौ मोनूं क्रपा मतल चढियां कलस ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—चौसट अवधान = महाकवि बांकीदासजी चौंसठ बातें एक साथ किया करते थे। पूबी = खूबी, विशेपता। ध्यातां = इतिहास-संबंधी बातें। रूपगां = कविता। पैंडो = मार्ग। मेहाही = हे मेहाजी की पुत्री।

१७—गीत [ दुर्गादासजी को ]

**दुरगदास** सोनंग दुहुँ भीच ग्रहियां दुजड,
कथन पतसाहनें यूँ कहावै ।
जसारा ढीकरा बिना गढ़ जोधपुर,
पत्री अनखसै सुज पता पावै ॥ १ ॥
आसकन तणों बीठल तणों कहै एम,
पात रछपाल ग्रहियाँ पडग पाँण ।
राजरा थापियो राजन लहै रवद,
धणी म्है थापसाँ जको जोधाँण ॥ २ ॥
भीर म्हे जकाँ भीरी विसंभर,
गाँज कुँण सकै जमराजरा गाव ।
राव एक थाप ऊथापिया रिडमलाँ,
रिडमलाँ पुडदड़ी रापिया राव ॥ ३ ॥
जके भड़ छेड़ पेसाड़ **अकबर** जवन,
हाथ है हीया हत हाँणिया ।
पाम जोधाँण अदू सीग फल पामिया,
साह मोकालिया जगत सुणिया ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—दुजड़ = तरवार । जसारा = यशवंतसिंह का । ढीकरा = पुत्र । अनखसै = नाराज होंगे । पता पावै = दुःख उठावेंगे । आसकन तणों = आशकरण का पुत्र दुर्गादास । बीठल तणों — बीठलदास का पुत्र सोनंग । पात = चारण । रवद = मुसलमान । थापसां = स्थापित करेंगे । भीर = सहायता पर । भीरी = सहायक । गांज सकै = छीन सके । रिडमलाँ = भाई, बेटे, जागीरदार ।

## १८—गीत [ बलूजी चाँपावत को ]

ए आगम कथन जे महर आपै, पोह धू जांण मेर प्रमाँण ।
मोनै अस रीझै मोकलियां, देसू अस बदलो दीवांण ॥ १ ॥
जग पड बचन कहै जोधपुरां, पता बचन नह पता पर ।
दहबारी काकल हुवे तण दिन, भाड़ां असचो लांध मर । २ ॥
प्रभणै गोपालोत यसी परा, जाँण उद्दै गिर रीत जही ।
आहाड़ा अस तसरो अदलो, नरंद बलू चूकसी नहीं ॥ ३ ॥
अमरसु छल गज गाह आगरै, रण चढ़ घणाँ मार सूं राद ।
चलतै दल घाटी चीतोडा, साकुर भर लीजै सीसोद ॥ ४ ॥
भीड पुरसाँण राँण दल भागा, समहर अमर भांजिया सार ।
उभै दलाँ निजर जद आयां, अस नीलो कमँध असवार ॥ ५ ॥
घाट निराट अहाड़ा घटताँ झाट घणाँ अर घाट जलू ।
नरपुर तणां बचन नरवाहं, बसियो सुरपुर पछै बलू ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—आपै = कहता है। पोह = प्रातःकाल। मेर = मरु पर्वत। अस = अश्व, घोड़ा। मोकलियै = भिजवाया। दीवांण = उदयपुर के महाराणा एकलिंगजी के दीवाण कहलाते हैं। दहवारी = स्थान-विशेष। कांकल = युद्ध। असचो = घोड़े का। प्रभणै = दृढ़ वचन कहता है। गोपालोत = गोपालसिंह का वंशज। साकुर = घोड़ा। आहाड़ा = गाँव-विशेष। नरवाहं = निर्वाह किया, निभाया।

नोट—बलूजी चांपावत के लिये ऐसा प्रसिद्ध है कि यह नागोर ठिकाने के जागीरदारों में से थे और जोधपुर-नरेश गजसिंहजी के बड़े

पुत्र अमरसिंहजी के पास रहा करते थे। कहते हैं कि अमरसिंहजी जिद्दी और धुनी मनुष्य थे। इन्होंने अपने सब जागीरदारों को ऐसा हुक्म दे रखा था कि वे राज की गाएँ भैंसे आदि जानवरों के साथ, जब वे चराई पर जावें, तब रक्षार्थ जावें। इस तरह से जब बलूजी की बारी आई तब यह बहुत बिगड़े और अमरसिंहजी के पास आकर बहुत कहा-सुनी करके वहाँ से अन्यत्र जाने को बिदा हुए। तब अमरसिंहजी ने ताने के तौर पर कहा कि अब आप जरूर बादशाही सेना को मोड़ेंगे (पराजित करेंगे)। यहाँ से चलकर यह (बलूजी) बीकानेर आए। कई दिनों तक ये यहाँ रहे लेकिन यहाँ के सरदारों से इनकी बनी नहीं इसलिए महाराज के कान भरना शुरू कर दिया। एक दिन महाराज ने फसल के मौके पर इनके पास एक बहुत बढ़िया मतीरा (तरबूज) भेजा। उस समय पर वहाँ पर बैठे हुए किसी ने इनसे कहा कि इस "मतीरे" के भेजने का भी आप अर्थ समझे या नहीं? तब इन्होंने कहा कि नहीं। उसने अर्ज की कि हमारे यहाँ जब किसी को निकालना होता है तब उसके पास "मतीरा" भेज देते हैं। इसका अर्थ यह है कि अब आप "मतीरो" अर्थात् मत रहो। यह सुनकर बिना किसी से कुछ कहे-सुने वे वहाँ से रवाना होकर उदयपुर के महाराणाजी के पास आए। महाराणाजी ने इनको बड़े आदरपूर्वक अपने पास रख लिया। किंतु यहाँ पर भी यह अधिक समय तक न रह सके, क्योंकि यहाँ भी जागीरदार इनसे ईर्ष्या करने लग गए और उन्होंने महाराणाजी से अर्ज की कि बलूजी चाँपावत बिना हथियार शेर का शिकार कर सकते हैं। बलूजी से जब कहा गया तो

इन्होंने इस प्रकार शिकार खेलना स्वीकार कर लिया। निश्चित समय पर सकुशल शिकार हो ही गया। लेकिन साथ ही बलूजी का मन भी महाराणाजी की ओर से फट गया। इसलिये ये यहां से भी विदा हो गए और सीधे बादशाही दरबार में पहुँचने के लिये आगरा आए। बादशाह शाहजहाँ ने इनको अपने यहाँ नौकर रख लिया।

इधर महाराणाजी के पास एक व्यापारी चार घोड़े लेकर उपस्थित हुआ और इनका मूल्य चार लाख रुपया उसने मांगा। राणाजी ने पूछा कि इनमें ऐसे कौन से गुण हैं जो इनकी कीमत एक एक लाख रुपया है। उत्तर में सौदागर ने निवेदन किया कि मेरे कहे मुताबिक यदि इनमें गुण न निकलें तो मैं इनका मूल्य नहीं लूँगा वरना मैं चारों के मूल्य का हकदार होऊँगा। महाराणाजी ने इसे स्वीकार कर लिया। तब उसने अर्ज किया कि एक बड़ी शिला मँगाई जावे और घोड़े के सुमों के बराबर गहरे खड्डे खुदवाए जावें। इसके बाद ऐसा ही हुआ। घोड़े को उस शिला पर खड्डों में पैर रखाकर खड़ा किया गया और फिर शीशा गलाकर उन खड्डों में भर दिया गया। इस तरह घोड़े के चारों पांव उस शिला में चिपका दिए गए। इसके बाद सौदागर ने अर्ज की कि अब किसी बढ़िया सवार को इस पर सवार कराइए। आज्ञानुसार वैसा ही हुआ। घोड़े के चाबुक लगाया गया। घोड़ा उछला, चारों सुम शिला में ही रह गए। तब सौदागर ने अर्ज की कि अब जब तक सवार नहीं उतरेगा तब तक घोड़ा बहुत अच्छी तरह काम देगा। इस प्रकार दूसरे घोड़े का पेट चीरकर तमाम आंतें बाहर निकालकर तंग कस दिए गए और अर्ज की कि जब तक इसके यह तंग नहीं खोले

जावेंगे तब तक यह काम देता रहेगा। इस तरह दो घोड़ों की मृत्यु के पश्चात् महाराणाजी ने सौदागर को चार लाख रुपया दे दिया, बाकी दोनों घोड़े अपने पास रख लिए। अब महाराणाजी ने विचार किया कि ये घोड़े किसको दिए जावें, कौन इनकी सवारी के योग्य है। किसी ने किसी का नाम बताया, किसी ने किसी का; किंतु महाराणाजी ने कहा कि यहाँ तो इन घोड़ों की सवारी के लिये कोई भी योग्य व्यक्ति नहीं दिखाई देता। अतः एक घोड़ा तो बलूजी के पास भेज दिया जावे। महाराणाजी का सेवक घोड़ा उस समय लेकर आगरे पहुँचा जिस समय अमरसिंहजी राठौर अर्जुन गौड़ द्वारा फाटक पर मारे जा चुके थे और अमरसिंहजी की स्त्री हाड़ीजी ने सती होने के लिए अपरसिंहजी का मस्तक ला देने को कइयों से कहा था। तब बलूजी ने ही पिछला वैर-भाव भूलकर हाड़ीजी को अमरसिंहजी का मस्तक ला देने की प्रतिज्ञा की थी। उस समय महाराणाजी का भेजा हुआ घोड़ा आ गया था। वे उसी पर सवार होकर इस युद्ध में गए थे और मस्तक हाड़ीजी को भेज दिया था। और महाराणाजी को यह संदेश भेजा था कि इस घोड़े का बदला मैं आपके काम आकर अवश्य दूँगा। बलूजी का घोड़े सहित इसी युद्ध में निधन हो गया था। किसी कवि ने उस समय का एक दोहा इस प्रकार कहा है—

"बलू कहै गोपालरो, सतियाँ हाथ संदेश।
पनसाही गढ़ मोड़कर, आवाँ छाँ अमरेश॥"

इसके पश्चात् कहते हैं कि दहबारी के युद्ध के अवसर पर जिस समय राणाजी की सेना हार चुकी थी और भागने लग गई थी, उस समय

बलूजी उसी घोड़े पर, जिसे राणाजी ने आगरे भेजा था, बैठकर इस युद्ध में आए और बादशाही सेना को हराकर अंतर्धान हो गए। उक्त गीत में इसी बात का उल्लेख किया गया है।

१६—गीत [ गोपालजी मेडतिया को ]

मृत अछडां करण माझिया मारण, कटकाँ अटक कंवियाँ काल;
भागा तूझ तणां भणकारां, गोपाला न करै गोपाल ॥ १ ॥
सुरताँणोत लियण ग्रह सबलां, सबलाँ पलाँ उतारण सीस।
मुडवा तूझतणां **मेडतिया**, दुवयण न काहाड़ै जगदीस ॥२॥
यूं लड़ताँ झड़ताँ आवाहै, सिरदाराँ ऊपर समसेर।
मरण दीय गजगाह मँडांणां, मुडियां नह सुणियां गिरमेर ॥ ३ ॥
**जैमलहरा** जाँणता जिमड़ां, साच प्रचां पूरियां सही।
बढ़ पड़ियां कागदां बचांणां, नीसरियै बाँचियां नहीं ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—माझिया = मुख्य मनुष्य। कंवियां = शत्रुओं का। भणकारां = झनकार। पलां = शत्रु। दुवयण = खोटे वचन। गजगाह = युद्ध। प्रचां = परिचय।

इति गीत

---

# अथ रस अलंकार

गीत

कांनां नै सबद न भावै श्रुत कटु,
सवदन सुधगत संसकिरत ।
अप्रयुक्त सुध सदन आध्यौ,
अरथ कहण असमरथ अत ॥ १ ॥
निहतारथ लैं अरथ प्रगट नहिं,
अनुचित अरथ न अरथ अजोग ।
पूरण रण निररथक व्है पद,
लै अस्लील समझ विध लोंग ॥ २ ॥
ईछते अरथ न कहै अवाचक,
सो संदग्ध रहै संदेह ।
अप्रतीत निज थान ऊवडै,
ग्राम्य गवार वचन मति ग्रेह ॥ ३ ॥
रूढ़ प्रयोजन सक्ति विना रच,
लछ अरथनैं यारथ लेख ।
क्रत बिरुद्ध मति बिरुद्ध मति क्रत,
आरोपक आरोप असेख ॥ ४ ॥
करता क्रिया जांण औ करतब,
बिध एही उद्देस विधेय ।

बिध उलटी अविमृश्य विधेयंस,
अरथ कष्ट मों कष्ट अधेय ॥ ५ ॥
वाक्य दोष प्रतिकूल वरण बद,
प्रगट वरण जिण रस प्रतकूल ।
सुध लछण मति अरुच हुऐ सुण,
मति विरुध रस व्रतहत मूल ॥ ६ ॥
नून चाहजै सो पद मों नहि
पद निकर्मांहैं अधिक पद ।
पद इक दुवै वरियांसु कथित पद,
हव सुण पतत प्रकर्ष हद ॥ ७ ॥
रनिवहै आरंभी रचना नहिं,
वल समास पुनरात विचार ।
संपूरण कर फेर सराहै,
अरधांतरैकवचक उचार ॥ ८ ॥
दल दूजारो पद दल दूजै,
जाण अबै अभवन मत जोग ।
कवि वांछत पद वाच्यन करहीं
पढ अनभीहित वाच्य प्रयोग ॥ ९ ॥
कहिणा जोग अरथ पण नहि कह,
अस्थांनस्थन पद निज ओक ।
वाक्य और पद और वाक्य विच,
लेखै संकारण कवि लोक ॥ १० ॥

वाक्य और व्है और वाक्य विच,
गर्भित दोषतणो आ गाथ ।
हांतै सबद प्रसिद्ध प्रसिद्धहत,
कहै निमै भग्नुपक्रम काथ ॥ ११ ॥
अक्रम क्रम नहि हुए ओलखो,
प्रस्तुत रस को और प्रकास ।
वरणीजै रस हूए विरोधो,
अमर दाखारथ सुरथ अवकास ॥ १२ ॥
प्रस्तुत अरथ नयार्थ पखै,
अरथ अपुष्ट कष्ट है आंन ।
व्याहत जण निरादर वरणै,
औही जठै हूए उपमांन ॥ १३ ॥
उभैवार पुनरुक्त अरथ इक,
दुक्रम आछो क्रम नहिं दाय ।
ग्राम्य गिवारू अरथ कहै गिण,
ससंदेह संदग्ध सुणाय ॥ १४ ॥
कहि निरहेत कहै नहि कारण,
विरुध प्रसिद्ध विद्य विरुद्ध ।
एक अरथ रचना अनविकृत,
अनियम नियम विषै मति उद्ध ॥ १५ ॥
अनियम जठै नियम जो आंणै,
और विसेष विषै अविसेष ।

ठह विसेष अविसेष ठिकांणै,
अपद मुक्त पारष अवरेष ॥ १६ ॥
पूरण करण ठौड नहिं पूरण,
पूरण करै और थल पाय।
भण अश्लीलजमहचर भिन्नह,
बुरा भलारौ संग बताय ॥ १७ ॥
पेखौ हियै विरुद्ध प्रकासित,
अरथ न भासै क्रम सौं त्यांण।
विधि अजुक्त सो दोष विचारै,
वल अनुवाद अजुक्त वपाण ॥ १८ ॥
प्रस्तुत अरथ विसेसण पेखौ,
मति अनुसार विरोधमई।
त्यक्त पुनः स्वीकृत वरणण तज,
कवि वल वरणै उक्त कई ॥ १९ ॥
रस विभचारी थाईरुचरूं,
वाच्य करै अनुभाव विभाव।
स्रम सौं पावै विभावादिसुज,
रै प्रतकूल हूवै कविराव ॥ २० ॥
पुनः पुनरदीपति पारखियै,
विन औसर विसतार वणै।
औसर विना विछेद ऊपडै,
भूर अंग विसतार भणै ॥ २१ ॥

जो रस अंगी भूलंजावै,
रुच वरणंत अनंग रस।
प्रकत विपजिय जठै पायजै,
प्रकत रसाल वन परस ॥ २२ ॥
प्रगट विरुधत किणही पदरी चाहरहै,
किल दोष नामसांकांनदियौ ;
अरथ दोस वालो कर हित,
पूरण बंक कियौ ॥ २३ ॥
अब निरणय साभल अरथ,
दिव्य अदिव्य प्रकत दिव्यादिव।
जेण विपै प्रभेद जताव धीरोदातधीरललिताहिधन,
धीरसांत धोरोध्रतधाव ॥ २४ ॥
इत्यादिक विपरीत उचारै,
पूरण औरस दोप प्रबंध।
रंचकर वैफल्य दोष रच,
अनुप्रासमै अरथ अपुष्ट ॥
वृत विरुद्ध प्रतिकूल वरण वद,
जमतीनपही संजुष्ट ॥ २५ ॥
अप्रयुक्ति दोषण आखीजै,
असादृस्य ऋुपमान असंभ।
जाति प्रमांण विपै उपमाजय,
न्यूनत अधिक अजोगनिदंभ ॥ २६ ॥

समर दुसह चंडाल सरीखौ,
जीवै करट मारकंड जेम।
सूरज अग्नि कणूंका सरीखौ,
नभ पाताल जिसौ इण नेम ॥ २७ ॥
निरख साधरम विषै न्यूनता,
जिकौ हीणपद दोष जरूर।
प्रगटै अधिकपणांस अधिक, पद,
पेख लच्छ हव मेधा पूर ॥ २८ ॥
मूंजी लांछत क्रस्नाजनमिल,
राजै बंक कहै मुनिराज।
धारनील जीमूत भागधन,
सोभै जेम ग्रही सिरताज ॥ २९ ॥
पीत वसनधर धनुषधार पढ,
मनहर भीम वणै मुर मार।
जुत चपला सुर धनुष चंद्रजुत,
सोभै नील जलद जिम सार ॥ ३० ॥
भिंग वचन कर काल विधीलख,
दोष भेद उपमा दरसाय।
वारि सुधा इव अहि इव वैणी,
कीरति चाँदणियां समकाय ॥ ३१ ॥
सुख राधानूं दियौ नंद सुत,
सुखदै ज्यौं पदमणिनूं सूर।

प्रीत वहैातेा विष्नपदांबुज,
. भागीरथी जेम गुण मूर ॥ ३२ ॥
भग्नप्रक्रम दूषण भाषीजै,
उत्प्रेछामैं देाष अवाच ।
औा नृपछित पालंत जथा अब,
मूरतवंत धरम सुषमाच ॥ ३३ ॥
अरथांतर न्यासेज अतात्वक,
उत्प्रेछत जेा अरथ अमान ।
समरथ करै जठैं व्है साँप्रत,
दूषण अनुचित अरथ निदान ॥ ३४ ॥
कटितेा देख लाजरू केहर,
मेाजागै छिपियौ वनमांहि ।
अधिक गुणी आगै अलवेली,
न्यूनगुणी पग माडै नांहि ॥ ३५ ॥
समासेाक्ति अप्रस्तुती प्रसंसा,
जुडै दांष पुनरुक्ति जठैं ।
तुल्य विसेसण वससूंतवजै,
अति निरणय मति हूंत अठैं ॥ ३६ ॥
कलावान संजुक्त कोमदी,
निसा वहाई प्राते नील ।
उतपल मुद्रत व्है मांनूं अब,
सुजनिद्रत व्है तिय इव सील ॥ ३७ ॥

( जोधपुर की पुस्तक नं० २ मे संग्रहीत• )

## ( कविराजा बाँकीदासकृत वृत्तरत्नाकर )

### ( खंडित अलंकार )

पदांरा विभागमौं पदांरो नृत्यत पणौं ॥ ओजं मिलत सैथल्यरूपप्रमाद ओजमें एना अंतरभूत हुए छै। जरै झटत अर्थ प्रतीतरौ हेतुपणौं सो अर्थ व्यक्ति प्रसादमें अंतरभूत हुऐछै ॥ प्रथकूत्वपदपणौं है रूप जिणरौ सो माधुर्ज्ज सोम्राज्य कीनौहैही। अकठन पणौ रूपहै जिणरौ सो सुकुमारता ॥ उज्जवल पणौं है रूप जिणरौ सो कांति। एअकष्टता अग्राम्यता यांरी दुष्टतारै त्यागमौं ग्रहण किया ॥ जठै परस्पर जुदांरी सहांवित्त विषै विषमपणौं इष्ट छै जठै मारगरो अभेद है आत्मा जिणरो सो समता ॥ सो दोस है ॥ भेदपणौं गुण है ॥ वीररस वाल्गरै विषै परुष वर्ण। श्रंगाररै विषै मिष्ट मचिक्कण वर्ण ॥ यूं रस सब्दांरा गुण नहीं। स्लेसादिक न्यारां रै ओजपणौं है क्यूं। गाढबंधपणा करनै चित्तरी विस्तार रूप दीपति ॥ जिणरा जनकपणामौं ॥ हत-वृत्त नहीं प्रापत है गौरवपणौं एसो अंतलघुपणौं ॥ रसरै प्रतिकूलपणौं लच्छणरै अनुसरण विषैपण असल्यपणौं। पूरबदल उत्तरदल अंतलघुगुरू वाह ए दूजै तीजै पदांतनहू ए रस अनुकूलही वृत्त आछौ वृत्त नावै ॥ असमास विभक्ति-

वाच्य हूंण । वर्णां पदांरै एकत्व पणौं करै सो समास ॥ जथा ॥ साकवल्लभ है जिणनै सो राजा साक वल्लभ राजा औ समास ॥ साक राजा मध्यम समास ॥

दोहा

गोपमित्र गोपाल है, मोदकंद व्रजवंद ॥
आप नित्त भूपाल है, नंद नंद बृजचंद ॥ १ ॥

अनुप्रास अस्वगत त्रिपदी कपाटबंध गोमूत्रिका एसे और ही चित्र है सो । अनुप्रास चित्रकौ सदेदसंकर है ॥

अथ अलंकार लिख्यते

अलंकारां विषै जथा जोम दोष संभवै सो पूर्वोक्ति दोषमैं मिलैहै जिणसौं पृथकत्व न कहिसां । अनुप्रासरा दोष प्रसिद्ध भाव वैफल्य वृत्त विरुद्ध सो अप्रसिद्ध अपरपुष्टार्थ प्रतिकूलवर्ण यांनूं लांघै नहीं ॥

क्रमेण उदाहरण

चक्री पंक्ति चक्रो प्रसन्न है स्तुति करै हरि हय हरिश्च धूर्ज्जटी धूर्ज्जजाता अक्ष नक्षत्र नाथो अरुण बरुण कूबराग्रं कुबेर रंघ संघ सुराणां इसा रथ वालो रवि त्वं रक्षक व्है ॥ अत्र कर्त्ता चक्र्यादिक स्तुति क्रियारथ अंग कर्म ॥ सो औ प्रसंग सूरजरी स्तुतिरा व्यास वाक्यादिकां विषै नहीं यातैं प्रसिद्ध भावदोष ॥ अनणुरण नू मणिमेपल मविरतस्यं जान मंजु मंजीरं परिसरण मरुणचरणे रण रण कम कारणं कुरुते ॥ पुनः ॥ भण तरुण रमण मंदर मानंद संदि सुंदरेंदुमुषी

सल्लीलोलापनौ इत्यादिक पद विचारियां रंचेक चारुपणौ दरसै सो अपर पुष्टार्थ ।। वृत्तविरुद्ध वर्ण प्रतिकूल पूरब कह्यौ कंठोत्कंठा । त्रिपाद गतत्वे जमक करै सो अप्रयुक्त दोष ।। उपमा दोष ।। उपमान असादृश्य उपमान असंभव ।। जाति-प्रमाणगत न्यून अधिकपणौ सो अनुचितार्थ दोष ।।

क्रमेण उदाहरण

तो मुषतैं वाक्य निकसै इंदुतैं मधु षिरै ज्यूं मधुपिरबौ चंद्रमैं संभवै नहीं कमल विना ।। कामदेव चंडाल सौ दारुण ।। जातिन्यून उपमान ।। पद्मामणें चक्रवाक विराजै विधि प्रजा रचण ईछतौ थकौ कमल विषै राजै ज्यूं ।। पुनः करट घणौ जीवै मारकंड ज्यूं ।। अत्र उपमान जाति अधिक अनुचितार्थ दोष ।। आकृति ग्रहण जाति ।। उपमान प्रमाणे प्रापत न्यूनता अधिकता ।। सूरज वन्हीरा कण जिसौ चंद सुधाबिंदुसौ ।। अत्र न्यूनता सो अनुचितार्थ दोष ।। नाभ पाताल जिसौ ।। कुचगिर जिसा ।। वेणी जमुना जिसी ।। अत्र अधिकता सो अनुचिताथ ।। साधर्मप्रापत न्यूनता सो हीनपद ।। आधकतासो अधिक पद दोष ।।

क्रमेण उदाहरण

मूंजी लांछत कृष्नाजिन सहित मुनि यूं राजै ।। नील-जीमूतरौभाग धारियां सूरज सोभै ज्यूं ।। अत्र मूंजी स्थानीय धर्म तडित् लच्छन तिकौ न कह्यौ सो हीनपद ।। पीत वस्त्र धारीयां धनुष धारियां कृस्न मनोज्ञ भीम सोभता हूआ सित-

रदा इंद्र धनु चंद्र महित नील बलाहक सोभै ज्यूं अत्र चंद्र-
धिक सो अधिक पद प्रथम विषै मंष न कह्यौ चामंकराभवसन
सिषंड चूड सहित कृस्नलसैं षिगा रुची इंद्र धनु बलाका जुत
नीलघन सोभै ज्यूं वग अधिक सो अधिक पद दोष पूर्वे
मोतीं कह्या चाहियै ॥ राधासौं आलिंगत तार हार दुत
सहित कृष्न सोभै वीजकर अलंकृत मेघराजै ज्यूं अत्र बलाक
कहे नहो यातें हीन पद ॥ अव लिंगकर कुचनकर काल-
कर पुरषकर दोष भेद कहै छै ॥ वारि सुधा इव मधुर ॥ सुधा
स्त्रीवाची उचित नहीं ॥ अमृत कहत्यौ चाहियै नपुंमकवाची
वारि सम ॥ तव कीर्ति चाँदनीयांसी ॥ अत्र चाँदनो कही चाहियै ॥
कृष्नराधाकौं मुषदेताहृ अपघ्नी नूं सूर्ज दियै ज्यूं उप-
मेय विषै भूतउपमान विषै भवन्काल ॥ विधीकर ॥ कृष्न
चरणां त्वं प्रीतप्रकहौ गंगाइव ॥ तो गंगा वहाँ यूं वर्णे नहीं
गंगातो वहे है ॥ कर्तव्यार्थ उपदेसो विधो । औ भग्न
प्रक्रम दोषहै ॥ उत्प्रेच्छा विषै अवाचक दोष आवै ॥
औछित पालछित पाले जथा मूरतवान् धर्म है ॥ अत्र जथा
साधर्मको प्रतीत करै यातै उपमा को वाचकहै मनुद्रुति संका
इत्यादिक कहिणा ॥ अर्थांतरन्यास विषै अतात्वक उत्प्रेक्षत
अर्थ समर्थ करै जत्र अनुचितार्थ दोष ॥ हे तन्वी तव कटि
देष ब्रीडा सो कंहरी मनूं वन मैं छिपांणो अधिक गुणा आगै
न्यूंनगुणो कद ठहरै ॥ अत्र अनुचितार्थ ॥ समासोक्ति
अप्रस्तुन प्रसंसा विषै पुनरुक्ति दोष आवै तुलय विसेसण-

वसथी ॥ कोमदी कलावान् सहित रात्रि विहाई प्राते नीलोत्पल मुद्रित व्है मांन् निद्रत व्हैहै वधू इव ॥ अत्र वधू पुनरुक्ति ॥ इति ॥

# अथ कविराज बाँकीदासजी कृत वृत्त-रत्नाकर

## ( ग्वंडित )

### संग्या प्रबंध

जुकूसम ॥ अजुकू विसम ॥ छंदवृत्त ॥ समवृत्ति । १ । विसमवृत्ति । २ । अर्ध समवृत्ति । ३ । च्यारपद समर ॥ च्यारूं जुदा विसम ॥ वृत्ति दोहादिक अर्धसम । ३ । छाईस ताई छंद परै डंडक ॥ तापरै गाथा ॥ एकाक्षर उक्ता । १ । दोयाक्षर अत्युक्ता । २ । मध्या । ३ । प्रतिष्टा । ४ । सुप्रतिष्टा । ५ । गायत्री । ६ । उष्निक् । ७ । अनुष्टुप् । ८ । बृहती । ९ । पंक्ती । १० । त्रिष्टुप् । ११ । जगती । १२ । अति जगती । १३ । सक्करी । १४ । अति सक्करी । १५ । अष्टी । १६ । अति अष्टी । १७ । धृति । १८ । अति धृति । १९ । कृति । २० । प्रकृति । २१ । आकृति । २२ । विकृति । २३ । संकृति । २४ । अभिकृति । २५ । उत्कृति । २६ ।

### मात्राछंद ॥ सामान्य नाम

आर्ज्या लच्छन ॥ सात चौंकल १ गुरु इता दलमैं ॥ चौकलमैं विसम मैं जगन आवै ॥ छठा गनमैं जगण ॥ ४

लघुकै ॥ प्रथम दलयूं ॥ उत्तर दले जगन घर लघु ॥ बारे १८ प्रथम उत्तर १२, १५ जति ॥ सेा पथ्या ॥ १२ लांघै जति विपुला । २ । ४ ज । दहूदले चपला ॥ मुख्य चपला । पूर्बमें न उत्तर मैं २४ । ज । जघन चपला ॥ इति आर्य्या प्रकर्ण गीती ॥ पत्थ्याका दल दोउ ॥ उत्तर सम उपगीती । प्रथम २७ दुतिय ३० उद्गीतो ॥ पूर्बदले बधतौ गुरज्यूं उत्तर आर्य्या गीती ॥ अथ वैतालीय प्रकर्ण ॥ १४ मात्रा व्है । पहिला पदमैं छकलधरं अग्र रगन लघु गुरू ॥ २ मै ८ मात्रा घर रगन लघु ॥ सम मात्रा औरसू न मिलै विसमतौ मिलै ॥ विसममैं छै मात्रा आगै रगन यगन मेलणौ ॥ सममैं ८ आगै रगण यगण मेलणौ उपछंदक सेा विसमपदे छ मात्रा आगै भगण देाय गुरू सम पदमैं ८ मात्रा अग्र भग ८ नै देाय गुरू ॥ सेा आपा तलिका ॥ छमात्रा आगै रगण लघु गुरू । सममैं आठ आगै रगण लघु गुरू ॥ पिण दूजी तीजी मात्रा भेली कहिणी ॥ ४ पदांमैं सेा दाक्षणातिका ॥ दूजौ लघु तीजासौं मिलै विसमपदमैं ॥ सेा उदीच्य व्रत्ति ॥ पांचमौं चेाथौं लघु मिलै सेा प्राच्यव्रत्ति ॥ विसमपद उदीच्य वृत्तिका ॥ सम पद प्राच्यवृत्तिका सेा प्रवृत्तकं ॥ प्रवृत्तक का पूर्ब दल जिमा देाई दल सेा परांतिका ॥ प्रवृत्तक का उत्तर दल जिसा देाई दल सेा चारुहास्यनी ॥ इति वैतालीय प्रकर्णम् ॥ अनुष्टुप् करकै उत्पन्न सेा वक्त्र छंद लिखोजै ॥ च्यारूं पदमैं नगण सगण आदिनावै ॥ च्यारूं अक्षर गुरु

धरणाकै ५ मौ कै छठौ लघु धरणौ अंत गुरू सो वक्त्र ॥ सम पदमैं ७ मौ लघु सो जुग्म विपुला ॥ ग्यारूं पदांमैं १६ लघु सो अचल धृति ॥ नवमौ लघु अंते गुरु सोलै सो मात्रा-समक ॥ दो गुरु ५ लघु सोभिश्लोक ॥ आठ मात्रा आगै ९ मौ लघु सौ बानवासिका ॥ आठ मात्रा आगै भगण दो गुरू सो उपचित्रा ॥ ५ मौ ८ मौ ९ मौ लघु सो चित्रा ॥ ९ मौ गुरू सो अपचित्रा ॥ मात्रा समकादिकरा पद व्है सो पादाकुलक ॥ तीस मात्रा कर अंते गुरु सो सिषा ॥ तीस लघु १ गुरु सोषजापैलादलमैं १६ गुरु ॥ दूजा दलमैं ३२ लघु ॥ सो अनंगक्रांडा ॥ २८ लघुमैं अंते गुरू सो अति रुचरा ॥ सिषाकै पद विषै इणरै दल विषै ॥ इतिमात्रा प्रकर्णं ॥ अथ वर्ण प्रकर्ण ॥ १ गुरु श्लोछद ॥ २ गुरूकौ स्त्रीछंद ॥ मगनकौ नारी ॥ रगनकौ मृगी ॥ मगन गुरु कन्या ॥ १ भगण दोयगुरू सो पंक्ति ॥ तगन यगण तनु-मध्या ॥ नगण यगण ससिवदना ॥ तगण सगन त्रसुमति ॥ रनगन १ गुरु मधु ॥ जगण सगण १ गुरु कुमारललिता ॥ तगन भगण गुरु चूडामणी मगन सगन गुरु मदलेखा ॥ सगन रगण गुरु हंसमाला ॥ रभगण २ गुरु चित्रपदा ॥ रमगण २ गुरु विद्युन्माला ॥ भगण तगण लघु गुरु सागवक मगण नगण २ गुरुहंस ॥ रगणजगण गुरुलघु समांनका ॥ जगन रगण लघुगुरु प्रमांणका ॥ तगण रगण लघु गुरु नाराचक ॥ जगण तगण २ गुरु वितान ॥ १ रगण नगण सगण सोहल-

मुखी ॥ रनगण १ मगण भुजग ससुभृता ॥ मगण सगण जगण गुरू ॥ सो सुध्रविराट ॥ मगण नगण यगण गुरु सो पणव ॥ रगण जगण रगण गुरु सो मयूर मारणी ॥ भगण मगण सगण गुरु सो रुक्मवती ॥ भगण मगण सगण गुरु सो चंपकमाला ॥ मगण भगण सगण गुरु सो मत्ता ॥ नगण रगण जगण गुरु सो मनोरमा ॥ १ तगण २ जगण २ गुरु सो उपस्थित ॥ २ तगण १ जगण २ गुरु सो इंद्रवज्रा ॥ जगण तगण जगण २ गुरु सो उपेंद्रवज्रा ॥ इंद्रवज्रा उपेंद्र-वज्राका पद मिलै ११ आन्तर्गीऔरही पद आवै सो उपजाती ॥ नगण १ । २ जगण लघु गुरु सो सुमुखी ॥ ३ भगण २ गुरु सो दोधक ॥ मगण १ । २ तगण २ गुरु । च्यार मात विषै जाति सो सासालनी ॥ मगण भगण तगण २ गुरु ॥ सो वातोर्मी ॥ भगण तगण नगण २ गुरुसो श्री ॥ पांच छ विषै जति ॥ मगण भगण नगण लघु गुरु सो भ्रमर विलसत्ता ॥ रगण नगण रगण लघु गुरु सो रथोध्रता ॥ रगण नगण भगण दोय गुरु सो स्वागता ॥ २ नगण सगण २ गुरु सो वृत्ता ॥ रनगण रगण लघु गुरु सो भद्रिका ॥ रगण जगण रगण लघु गुरु सो सेनका ॥ जगण सगण तगण २ गुरु सो उपस्थित ॥ इनूं केई सिपंडित कहै ॥ भगण तगण नगण दो गुरु सो मौक्तिकमाला ॥ रगण नगण भगण सगण सो चंद्रवर्त्म ॥ जगण तगण जगण रगण वंसस्थ ॥ रतगण जगण रगण सो इंद्रवंसा ॥ ४ ज मोतीदाम ॥ ४ स तो-

टक ॥ न ॥ म्न १ रगण ॥ सेाद्रुम विलंबत ॥ मभजयगण से
द्रुतपद ॥ २ नमयगण ॥ ८, ४ विषै विश्राम सेा पुट ॥ रन २
रगण सेा प्रमुदित वदना ॥ नयनयसेा कुममविचत्रा जस जस
सेा जलेाध्रतिगति॥ य ४ भुजंगप्रयात ॥ र ४ सेा स्रगवेणी ॥
नभजरगण सेा प्रियंवदा ॥ तय तय सेा पुस्पविचत्रा ॥ तय
तय हूं ६ विषै जति सेा मणिमाला ॥ नभजरगण सेा ललिता ।
मज । रस गण ॥ प्रमताद्दता ॥ ननभरतेात्थ भिह्नतेा-
ज्वला ॥ ममयय सात पांचविषै जति सेा वैस्वदेवा ॥ मभ-
मम सेा जलधरमाला ॥ नज मय सेा नवमालनी ॥ २ न
२ रगण सात पाँच विषै जति सेा प्रभा ॥ जर जर सेा पंच-
चामर ॥ मजजर सेा मालती ॥ न १, २ जय ॥ सेा
तामरस ॥ सातपांच विषै जति । २ न २ त १ गुरु सेा
त्तमा ॥ मनजय १ गुरु । तीन दस विषै जति सेा
प्रहर्षणी । जभ सज गुरु । ४, ६ विषै जति सेा रुचिरा ।
मतयस गुरु सेा मत्तमयूर ४, ६ विषै जति ॥ जसतस गुरु
सेा उपस्थित ॥ जतसज गुरु सेा संधिवर्षणी ॥ नजसज
गुरु सेा मंजुभाषिणी ॥ मज ॥ २ मगण १ गुरु सेा
नंदनी ॥ २ नतर गुरु सेा चंद्रिका ॥ छ सात विषै जति ॥
मननस । २ गुरु सेा संबंधा ॥ ५, ६ विषै जति ॥ ननर-
सलघुगुरु सात २ विषै जति सेा अपराजिता ॥ ननभनलघुगुरु
सेा प्रहर साकलिका ॥ तभजज । २ गुरु सेा वसंततिलका ॥
कास्यप मुनिसिंघाध्रता ॥ सैतवउदवर्षिणी ॥ गेाम मधुमाधवी ॥

चेतोहर रामकीर्ती ॥ भजसन ॥ २ गुरु सो इंदुवदना ॥ मसमभ । २ गुरु सो लोला ॥ सात २ विपै जति ॥ मभनत । २ गुरु सो हंससेना ॥ ४,१० विपै जति ॥ १,४ लघु १ गुरु सो ससिकला ॥ श्रौर्हा स्रगद्दै छ नव विपैं जति हूआ ॥ श्रौही मणिगणनिकराह्वैं ८,७ विपै जति हूआ । ५ मसो काम-क्रीडा ॥ ननमयय सो मालिनी ॥ ८,७ विपै जति ॥ नजभजर सो प्रभद्रक ॥ सजननय ॥ पांच दस विपै जति । सोयेला-मरमयय सात ८ विपै जति सो चंद्रलेखा ॥ भरननन गुरु सो ऋषभ गजविलसत ॥ ७,६ विपै जति ॥ नजभजरगुर सो बांणणी ॥ यमनसभलघुगुरु । छ ११ विपै जति सो सिष-रणी ॥ जसजसयलघु ८,६ विपै जति सो पृथ्वी ॥ भरन भन लघु गुरु १०७ विपै जति सो वंसपत्र ॥ नसमरस लघु गुरु ६, ४, ७ विपै जति सो हरणी ॥ मभनतत । २ गुरु सो मंदाक्रांता ४, ६, ७ विपै जति ॥ नज भजज लघु गुरु सो नर्कुटक ॥ ७, ६, ४ विपै जति हूआं श्रौकोकिलक ॥ मतनयय ५, ६ विपै जति सो कुसमितलता ॥ ननययय १०,८ विपै वृत्ति सो लताछंद ॥ यमन सरर गुरु सो मेघ विस्फुर्ज्जत ॥ मसजससतत गुरु सो सार्दूलविक्रीडत ॥ रभज ततत गुरु सो बल्लकी ॥ १०,६ विपै यति ॥ मरभन-यन लघु गुरु सो सुवदना ॥ रज रज रज अंते गुरु लघु सो वृत्त ॥ मरभन ययय सो स्रग्धरा ७,७,७ विपै यति ॥ भभभ-यन रन गुरु सो भद्रक १०,१२ विपै यति ॥ सजतनसरर

गुरु मेहास्रग्धरा ॥ ७,७,७ विषे जति ॥ नज भज भजभ लघु सो अस्वललित ॥ ममतननन लघु सो मत्ताक्रीड ॥ ८,५,१० विषै जति ॥ भतनमभभनय सो तन्वी ॥ भममभननन गुरु सो क्रौंचपदा । ५,५,८,७ विषै यति ॥ ममतनरन नरस लघु सो भुजंगविजृंभत ॥ मननननननस दो गुरु सो अपवहाथ ॥ ६,६,६,५ विषै यति ॥ इति समवृत्ति प्रकरणं ॥ मनययययययरर सो चंडा पृष्टिप्रयात डंडक ॥ नन सात आगै रगन वधीयां नाम ॥ १ अरण । २ अरणव ॥ ३ व्याल ॥ ४ जीमूत ॥ ५ लीलाकर । ६ उद्दाम । ७ संष इत्यादिक नाम पावै ॥ ननयय ययययय सो प्रचितकसडंडक ॥ इति समवृत्ति ॥ अथ अर्धसमवृत्ति ॥ विसमदल मैं ३ सलघु-समदल मैं इभ २ गुरु सो उपचित्र ॥ विसम दल मैं ३ भ २ गुरु समदल मैं न जजय सो द्रुतमध्या ॥ विसमदले ३ स २ गु समदले इभरगु सम । सो वेगवती ॥ समदलं तजर १ गु विसमदले ममज २ गु सो भद्र विराट ॥ विसमदले सजसगु । समदले भरनर गु सो केतुमती ॥ विसमे तनज २ गु । समे जतज २ गु सो **आख्यानकी** ॥ विसमे जतज २ गु ॥ समे ततज २ गु । सो **विपरीत आख्यानकी** ॥ विसमेससस लघु ॥ समेन भरभर सो **हरणी पुलता** विसमेननरलघु ॥ समेनजजर सो वक्त्रं ॥ विसमेननर समेनजजर गु सो पुस्पताग्रा ॥ केइक वैतालीयनै अपर वक्त्राख्य केइक पुस्पताग्रानै औपछांदसि कहै इति अर्धसम वृत्ति ।

अथ पदचतुरुर्धवृत्ति ॥ प्रथमपदे ८ । २ । १२ । ३ । १६ । ४ । २० ॥ ३ पद या विध ४ पदांत २ गु । सो पीड ॥ १ पदे । १२ । २ । ८ ॥ ३ । १६ । ४ । २० सो कलिता ॥ १ । १२ २ ॥ १६ । ३ । ८ । ४ । २० दो गुरच्यारों पदांते सो लवल्या ॥ १ । १२ । २ । १६ । ३ । २० । ४ ॥ ८ ॥ सो अमृतधारा ॥ पदचतुरुर्धप्रकर्ण संपूर्णम् ॥ आदपदे सजसलघु । २ ॥ नसजगु ॥ ३ ॥ भ नजलघु । ४ ॥ सज सजगु ॥ सो उद्गीत तीन इण जिसापद तीजामै रनभगुसो सोरभक ॥ तीन पद उसाहीज । तीजामैं नन ससो ललित ॥ इति उद्गाताप्रकर्ण ॥ प्रथमपदे मसजभरगु ॥ दूजा सनजरगु ॥ तीजामैंननस । ४ मैं ॥ नननजय सो उपस्थित प्रचुपित ॥ और पद प्रथम जिमा तीजा मै तजर सो आरषभ ॥ इति उपस्थित प्रचुपित प्रकर्ण । अथ गाथा ॥ कै विसम अक्षर ह्वै पद मौकै विषम पद ह्वै ॥ सो गाथा ॥ इति श्रीवृत्तिरत्नाकर लिखते आसीया बाँकादास सहर जोधपुर मध्ये ॥

## काव्य के गुण-दोष (खंडित) जो कविराजा बाँकीदासजी के प्रतीत होते हैं।

पणांसूं ज्यूं भेद छै त्यूं गुणांरै नै अलंकारांरै भेद छै ॥ अथ गुणभेद ॥ माधुर्ज्ज ओज प्रसाद क्रमकर लच्छण आल्हादिक पणौ सो माधुर्ज्जस्रंगार द्रुतिकारण करुणा विप्रलंभसांते अत्यंत द्रुतिरौ कारणकों कहै द्रुतिकांई जिणरौ समाधान सामाजिकां सभ्यारै चित्तविषै नव रसांरै समूह सूं प्रगट होण जोग तीन अवस्था इति १ विस्तार २। विकास ३ ॥ किणां रसां सूं किसी अवस्था है सिंगार करुणा सांतसूं द्रुति वीर विभच्छ रुद्रसूं विस्तार हास्य अद्भूत भयाणकसूं विकास हास्य विषै वंदनीयकौ अद्भूते नेत्र विकासभया एकसूं सीघ्रगवन ॥ ओजलच्छन चित्तरै विस्तार रूप दीपतिरौजनक ओज वीरविभच्छ रुद्र विषै क्रमकर ओजरौ आधिकपणौ प्रसाद लच्छण ॥ अग्निज्यूं सूकै काष्टप्रतै व्याप्त व्हैछै फेरूं निर्मल जल मिसरी प्रतै व्यापि जिण तरहसूं चित्तप्रतै जो व्याप्त होय सो प्रसाद ॥ सर्व रसां विषै सर्व रचनां विषै स्थिति है जद प्रसादगुण वीररुद्रादिकां विषै चित्त प्रतै व्याप्त होय जद सूका काठ विषै

अग्नि ज्यूं जद प्रसाद गुण चित्तप्रतै सिंगार करुनादिकांरै विषै व्याप्ति होय निर्मल जल सिताप्रतै ज्यूं ॥ स्लेस १ प्रसाद २ समता ३ माधुर्ज्ज ४ सुकुमारता ५ अर्थव्यक्ति ६ उदारार्थ ७ ओज ८ क्रांति ९ समाधि १० ए दस गुण डंडी मानैछै सेा तीनां ही में अंतरभाव हुवैछै ॥ केइक देासरा अभावपणे कर अंगीकार कियाछै। कंइक देास रूप छै अठा आगै माधुर्ज्जादिक तीन गुण ज्यांरा व्यंजकवर्ण कहैछै। वरण समास रचना जिकां गुणांरा व्यंजक होय किसा गुणरा किसा विंजक ॥ मस्तक विषै आपरै वर्गरै छेहला अक्षर करकै जुक्त ट ठ ड ढ करकै रहित इ कसौं लेनैमताई जिके अक्षर। ह्रस्व सुर सहित रेफनै णकार असमासनै मध्यम समास माधुर्ज्जवती पदांत जैाण विषै रचना औ माधुर्ज्ज गुणरा व्यंजकछै वर्गरै प्रथम नै त्रतिय करनै वर्गरै दूसरै चैाथै क्रम कर जेाग रेफ करनै जेाग होय तूल्य अक्षरांसै जेाग होय ट ठ ड ढ श ष इमा वर्ण दीर्घ समास विकट संघटना औ ओजरा व्यंजक छै स्रवण मात्रकरनै सुणियां थकां वर्ण समासनै रचनां आं अर्थरी प्रतीत करै सेा प्रसाद गुण ॥ संधिरै सुंदरपणें सूं पदांरै एक पद पणै करनैव्है ज्यूं प्रकास सेा श्लेस ॥ "उन्मज्जज्जलकुंजरेंद्रबहलास्फालानुबंधाधुत:" ॥ इति उदाहरण ॥ आरेाहा अवरेाहा सरूपहै। जिणरी सेा समाधि ॥ आरेाह सेा गाढता अवरेाह सेा सिथिलता ॥ चंचल जेा भुज त्यांकर भमाई जेा चंडगदा तिणरी अभिघात तिणकरनै संचूरणात आरेाह चढबैा अवरेाह उतरबैा ॥

इति आरोह ।। उरुदोय सुजोधनरा अठातांई अवरोह ।। भे मौहू श्रौरुधर तिणकर रक्त है कांति जिणरी सेा थारै फेरनं सोभित करैलौ थारै अठातांई आरोह ।। हे देवी भीमकरैला अठातांई अवरोह ।। विकटवंधपणैहै सरीर जिणरै। सेा उदारवा ।। ।।*

— —

* यह अपूर्ण और खंडित ही प्राप्त हुआ। इस ख़याल से इसको इस ग्रंथावली के साथ लगा दिया है कि इसको देखकर डिंगल के विद्वानों के संग्रह में बांकीदास-कृत ये ग्रंथ पूरे मिलेंगे तो फिर कभी वे पूर्णरूप में छापे जा सकते हैं।

—सम्पादक।